जून 2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक - 6 | प्रति – ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

7 ▶ आत्मशुद्धि : तत्त्वज्ञान का प्रथम सूत्र
18 ▶ ध्यान योग : आत्मा की अमृत यात्रा
30 ▶ सफलता के स्वर्णिम सूत्र
51 ▶ संकल्प की अपार शक्ति

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

अमर्यादित इच्छाएँ ही त्याज्य हैं।

ऐश्वर्य और विलासिता में भारी अंतर है। इंद्रियों की सरसता का निर्माण, जीवन की नीरसता एवं जड़ता को हटाकर उसमें आनंद एवं जागरूकता भर देने के लिए हुआ है। पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ अपने सात्त्विक भोगों को उपलब्ध करके आत्मा के आनंद को बढ़ाती हैं और जीवन को सुविकसित एवं प्रफुल्लित बनाने में सहायक होती हैं। ऐसी एक भी इंद्रिय शरीर में नहीं है, जो स्वभावतः पतन का कारण हो। पर जब उनका अविवेकपूर्वक अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग किया जाता है, तो वे आतिशबाजी की तरह अपनी शक्ति का नाश होते समय कुछ मनोरंजन तो अवश्य करती हैं। पर वह विनाश अंततः बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखदायी सिद्ध होता है। सात्त्विक, सरस, स्वादिष्ट भोजन की इच्छा उचित है, समान चित्त का दांपत्य जीवन एक बड़ी अपूर्णता को पूर्ण करता है। नेत्रों से, कानों से, नाक से, वाणी से हमारी ज्ञान-वृद्धि होती है। उनकी सहायता से उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। रूपवान नर-नारियों, बालक-बालिकाओं को देखकर, प्रकृति के सौंदर्य का निरीक्षण करके आत्मा के आंतरिक उल्लास में असाधारण अभिवृद्धि होती है। यदि इंद्रियाँ नष्ट हो जाएँ तो मानव वृक्ष, वनस्पति आदि की तरह जड़ संज्ञा में पहुँच जाएगा। ये दस इंद्रियाँ ही हैं, जो अविकसित होने के कारण मानव प्राणी को सृष्टि का मुकुटमणि और सुख-सौभाग्य का निर्झर बनाती हैं। इंद्रिय-निग्रह, इंद्रिय-दमन आदि का अर्थ—उनका 'सदुपयोग करना' ही है। पुत्रैषणा के शिष्ट शब्द में काम सेवन की ओर ऋषियों का संकेत है। इंद्रिय-विकारों में चटोरापन और कामुकता प्रधानतः दो ही दोष हैं। इनको सुव्यवस्थित, संतुलित रखा जाए और अन्य इंद्रियों से समुचित आनंद-लाभ किया जाए तो यह ऐश्वर्य उचित भी है और आवश्यक भी। अनुचित, अमर्यादित विषय—लोलुपता को ही निंदित ठहराया गया है। ऐश्वर्य में इंद्रियों के सदुपयोग द्वारा आनंद लाभ में कुछ भी दोष नहीं, उलटा अपूर्णता एवं नीरसता हटाकर पूर्णता एवं सरसता की ओर अग्रसर होने का लाभ ही है।

(अखण्ड ज्योति, जून-1951, पृष्ठ-13)

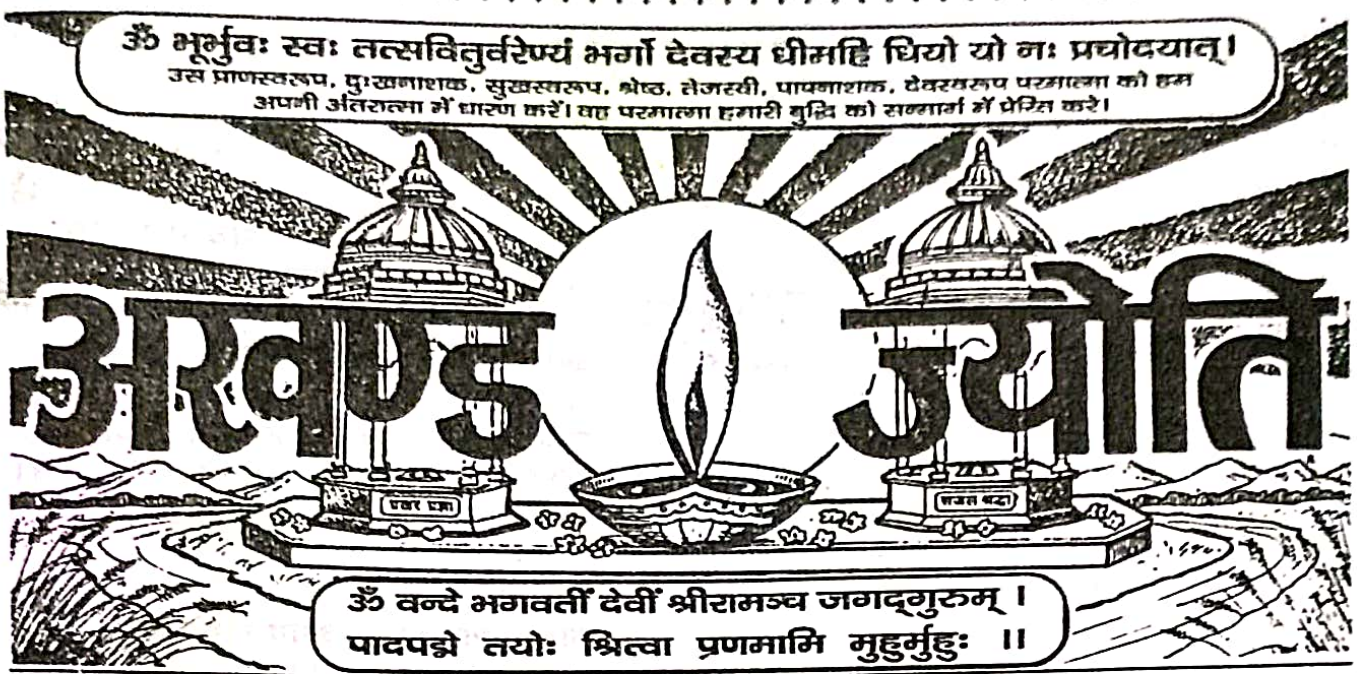

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	06
जून	:	2026
ज्येष्ठ-आषाढ़	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.05.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

शांतिकुंज के गुरुजी-माताजी

'शांतिकुंज के गुरुजी-माताजी'—जन-मन ने उन्हें इसी रूप में स्वीकारा, अपनाया और अपनी अंतश्चेतना में प्रतिष्ठित किया। गायत्री परिवार के परिजनों के लिए वे सदा प्यार लुटाने वाले गुरुपिता और अपने वात्सल्य रस से संतानों पर अमृत अभिसिंचन करने वाली माताजी थीं; लेकिन सर्वसाधारण के लिए भी वे सहज सुलभ थे। हरिद्वार-क्षेत्र के रिक्शेवाले, दुकानदार, यहाँ आने वाले पर्यटक, आस-पास के अधिकारी-कर्मचारी सभी उनके दर्शनों के लिए आते रहते थे। ये सब उनका प्यार पाते, यहाँ भोजन करते और उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा से अभिसिक्ति होते। वर्ष 1972 से वर्ष 1983 तक पूज्य गुरुदेव से मिलने, भेंट करने में कोई रोक-टोक न थी। वे सभी के लिए सुलभ थे। यदा-कदा शाम को गुरुजी-माताजी साथ-साथ घूमने निकल जाते। इसके लिए साइकिल-रिक्शा उनका प्रिय वाहन था। तब शांतिकुंज में एक साइकिल-रिक्शा भी था। कनखल उनका प्रिय स्थान था, जहाँ वे प्रायः जाते थे। इस साइकिल-रिक्शे को चलाने वाले कार्यकर्त्ता का नाम गणेश था। वही इन्हें लेकर उनके यथा-इच्छित स्थान पर ले जाया करता। कनखल या फिर ऋषिकेश—उनके दो ही प्रिय स्थान थे। शाम को जब गणेश उन्हें रिक्शे पर बिठाकर बाहर निकलते, तब लोग हँसते हुए यही कहते—'देखो गणेश जी शिव-पार्वती को लेकर घूमने जा रहे हैं।' जाते हुए-आते हुए वे दोनों सभी से मिलते, उनका हाल-चाल पूछते। आवश्यकता पड़ने पर उनकी कष्ट-कठिनाइयों का निवारण भी करते। सभी यह जानते-मानते और स्वीकार करते थे कि शांतिकुंज के गुरुजी-माताजी उनके लिए संकटनिवारक-सर्वसिद्धिदायक हैं। शांतिकुंज के ये ग्यारह वर्ष गुरुजी-माताजी के साथ सदा ही **'न भूतो न भविष्यति'** बने रहेंगे। ❑

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- शांतिकुंज के गुरुजी-माताजी — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  महासागरों की मर्मांतक पीड़ा — 5
- आत्मशुद्धि : तत्त्वज्ञान का प्रथम सूत्र — 7
- भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व — 9
- षट्कर्म का तत्त्वदर्शन — 12
- अध्यात्म एवं परमार्थ — 13
- **पर्व विशेष—कबीर जयंती**
  समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोई — 15
- ध्यानयोग : आत्मा की अमृत यात्रा — 18
- चरित्र-निर्माण का महत्त्व — 19
- साधना से ही मिलती है सिद्धि — 22
- यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान — 23
- सादगी — 26
- राष्ट्र गौरव सरदार वल्लभभाई पटेल — 27
- सफलता के स्वर्णिम सूत्र — 30
- मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — 33
- आमूलचूल परिवर्तन का समय — 35
- जीवन-निर्माण की पाठशाला है परिवार — 36
- विराट दृष्टि — 39
- भारतीय संस्कृति—विश्व संस्कृति — 40
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—5**
  सबका हित ही अपना हित — 43
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—207**
  खान-पान के मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर शोध — 46
- **युगगीता—313**
  अनुशासनहीन, मूढ़ और कृतघ्न होते हैं तामसी कर्त्ता — 49
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  संकल्प की अपार शक्ति (पूर्वार्द्ध) — 51
- **विश्वविद्यालय परिसर से—252**
  विकसित भारत की नींव रखता विश्वविद्यालय — 59
- **साधना शताब्दी—विशेष लेखमाला**
  कलाओं में जीवन-सौंदर्य — 61
- **अपनों से अपनी बात**
  प्रज्ञा साहित्य का वैश्विक प्रसार युग की आवश्यकता — 64
- विचार क्रांति—एक सुनिश्चित संभावना (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

ध्यान अंत:करण के जागरण का विज्ञान

जून-जुलाई, 2026 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	11 जून	कमला एकादशी	सोमवार	29 जून	संत कबीर जयंती/ पूर्णिमा
सोमवार	15 जून	सोमवती अमावस्या	शुक्रवार	10 जुलाई	योगिनी/ रमा एकादशी 'स्मा.'
बुधवार	17 जून	महाराणा प्रताप जयंती	गुरुवार	16 जुलाई	रथयात्रा
बुधवार	24 जून	गायत्री जयंती/ पूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस	शनिवार	25 जुलाई	देवशयनी एकादशी
गुरुवार	25 जून	निर्जला एकादशी	बुधवार	29 जुलाई	गुरु पूर्णिमा

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक

विशिष्ट सामयिक चिंतन

महासागरों की मर्मांतिक पीड़ा

नदियों में जल-प्रदूषण को पीछे छोड़कर अब महासागरों में भी गंदगी का खतरा बढ़ता जा रहा है। ब्रिटेन के प्लिमथ विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं ने दुनिया भर से जुटाए गए तथ्यों पर आधारित एक शोध के जरिए यह साबित किया है कि समुद्र के भीतर मानव निर्मित कचरे में उलझकर अथवा उसे निगलकर 44 हजार से ज्यादा जानवर और दूसरे जीव जान गँवा रहे हैं। साथ ही समुद्री वनस्पतियों के भी नष्ट होने की आशंका बढ़ रही है।

मरीन पॉल्यूशन बुलेटिन में छपा प्रोफेसर रिचर्ड थॉमसन और सारा गाल का यह शोधपत्र कहता है कि महासागरों में जीवों की करीब 7000 प्रजातियों के तो बहुत तेजी से खतम होने की आशंका बढ़ रही है। प्रश्न है कि इतने बड़े पैमाने पर समुद्र में कचरा आखिर आता कहाँ से है?

शोध बताते हैं कि इस कचरे में नदियों का प्रदूषण, डूबे समुद्री जहाजों और कंटेनरों का सामान, वायुयानों का मलबा, जहाजों में लादकर ले जाए जा रहे पेट्रोलियम पदार्थों और दूसरे सामानों का बह जाना, समुद्री यात्रियों की ओर से इस्तेमाल किए जाने वाले सामानों के फेंके गए पैकेट और तटों के किनारे बसे शहरों की गंदगी, सभी कुछ है।

विशाल समुद्र की गहराई में छिपे अपशिष्ट का पता लगाने की तकनीक तो हमने विकसित कर ली है, पर अफसोस यह है कि एक ओर उसमें कचरे की मात्रा बढ़ने से रोकने में सफलता नहीं मिल रही है तो दूसरी ओर कचरे को बाहर निकाल कर पुरानी स्वच्छता को बहाल करने में सफल होने की तकनीक भी खोजी जानी अभी शेष है।

सारी दुनिया कचरे को गिरते और फैलते हुए लाचार होकर देखने को मजबूर है। यह संकट अचानक नहीं आया है, बल्कि मानव की ओर से लंबे समय से की जा रही गलतियों का सहज परिणाम है। ध्यान देने की बात यह है कि इससे निपटने की दिशा में वैश्विक स्तर पर अभी तक कोई कारगर कार्ययोजना तक नहीं बनाई जा सकी है। आखिर उस बेतहाशा फैलते कचरे से बचाव कैसे हो, इसका फिलहाल सही जवाब मलबे को महासागरों में गिरने से रोकना ही दिख रहा है लेकिन अभी हाल यह है कि इनसान अपने स्वार्थों के लिए पंचतत्त्वों में से किसी को शुद्ध छोड़ने के लिए तैयार नहीं है।

वह नदी-नाले, पहाड़, जंगल-मैदान, समुद्र-अंतरिक्ष सभी जगहों पर अपने कदमों के निशान के रूप में कचरा छोड़कर आ रहा है। ऐसे में हम रोजाना कितनी अमूल्य वनस्पतियों और जीव-प्रजातियों को नष्ट कर रहे हैं, इसका अनुमान लगाना भी असंभव है। हिमालय के पहाड़ों पर ग्लेशियरों के पिघलने और बरसात के पानी के साथ सदियों पुरानी जड़ी-बूटियों और दूसरे तत्त्वों से संयोग गंगा के जल को चमत्कारिक बना देता है।

उसी तरह समुद्र के भीतर समायी असंख्य वनस्पतियों और दूसरे तत्त्वों के संयोग के बल पर ही उसकी भी गरिमा टिकी है। उनके बारे में दुनिया भर के वैज्ञानिक अभी शोध कर रहे हैं, लेकिन वेदों और दूसरे धार्मिक ग्रंथों में उनके बारे में जानकारी बहुत पहले से मिलती है।

समुद्र को कचरे से पाटने में विकसित और विकासशील, अमीर और गरीब, सभी तरह के

देशों ने योगदान दिया है, लेकिन इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं जा रहा है कि उस कचरे से समुद्र की बाहरी परत और भीतर जरूरी रासायनिक संयोगों में बड़े अवरोध पैदा हो रहे हैं। इससे समुद्र में भारी तबाही मचने की आशंका बढ़ती जा रही है, लेकिन कचरे को निकालने के लिए कोई भी ईमानदार और सार्थक प्रयास होता नहीं दिख रहा है।

इनसान के कदम चाँद के बाद अब अंतरिक्ष के दूसरे ग्रहों की ओर बढ़ रहे हैं। इनसान चारों ओर कचरा फैलाने के लिए तो तैयार है लेकिन उसे बटोरने के लिए वह हमेशा एकदूसरे का मुँह देखता है। तो क्या अब नगरपालिकाओं और नगरनिगमों की तरह हजारों नॉटिकल मील क्षेत्रफल वाले समुद्र के लिए भी 'वैश्विक महासागरीय सफाई निगम' की जरूरत है? समुद्र में गंदगी फैलने से रोकने की अपेक्षा उसकी सफाई का काम ज्यादा कठिन है।

ऐसे में उचित है कि महासागरों में गंदगी जाने पर रोक लगाई जाए, लेकिन इसके लिए अभी तक वैश्विक स्तर पर कोई भी कानून व्यावहारिक तौर पर काम नहीं कर पा रहा है। असल में उस असीमित जल में किसी भी कानून को लागू करना और उसके तहत कार्रवाई करना, दोनों ही काम बहुत कठिन हैं। समुद्र प्रदूषण अंतरराष्ट्रीय जल सीमाओं को छूने वाला एक बहुत बड़ा संकट है। समुद्री सीमाओं को लेकर हमेशा होते रहने वाले विवादों की परिणति कई देशों के बीच सैन्य संघर्ष के रूप में होती रहती है।

उन क्षेत्रों से संबंधित देशों के बीच पहले से बने दुर्घटना, अतिक्रमण और आक्रमण की घटनाओं से संबंधित कानूनों का पालन कराना और अदालत में मामले चलाना बहुत बड़ी चुनौती होता है। वैसे कानून के बनने के बाद भी यह पता लगाना बहुत कठिन होगा कि गंदगी किसने फैलाई है?

इतने बड़े जल-क्षेत्र की उपग्रहों के जरिए भी नियमित निगरानी करना संभव नहीं है। समुद्र के भीतर की गंदगी के जिम्मेदार लोगों की रोजाना टोह लेना तो असंभव काम है। अफसोस यह है कि जल सीमा-क्षेत्र के अतिक्रमण, समुद्री लूट-मार, दुर्घटनाओं वगैरह को लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कानून बने हैं, लेकिन अभी तक कोई ऐसी संस्था अथवा अदालत नहीं बनी है, जिसके जरिए विशाल समुद्र में प्रदूषण फैलाने के लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ कार्रवाई करने का काम किया जा सके।

यही कारण है कि उनमें से ज्यादातर स्थितियों में सभी देशों के निजी कानून भी प्रभावी हो जाते हैं। यह भी गौर करने की बात है कि तनाव की स्थिति आने पर कुछ देशों के बीच उनकी जल सीमाओं में आपसी युद्धकालीन गठबंधन बन जाते हैं। इसी तरह किसी भी देश के वायुयान, समुद्री जहाज या मछुआरों की नौकाओं के लापता होने की स्थिति में उन्हें ढूँढ़ने के लिए सभी देशों के बीच सहमति और सहयोग बन जाता है। उसमें सभी देश अपनी सीमाओं के अंतर्गत तलाशी-अभियानों में अपने धन और संसाधन, दोनों का इस्तेमाल करते हैं।

कुछ मामलों में तो कई देशों की ओर से अपने संसाधन दूसरे देशों की जल सीमा में भी मुहैया कराने की पेशकश की जाती है। ऐसे अभियानों का दुनिया भर में बड़ा सकारात्मक संदेश जाता है, लेकिन प्रदूषण को खतम करने के मुद्दे पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहमति बनना तो बड़ी बात रही, किसी एक देश की ओर से भी बड़े पैमाने पर अनुकरणीय प्रयासों की कार्य योजना बनती नहीं दिखाई देती है। ऐसे हालात में समुद्री जल-क्षेत्र कानूनों में बदलाव किए जाने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय गठबंधन बनाकर समुद्र की सफाई के लिए भी बड़े पैमाने पर प्रयास किए जाने की जरूरत है। इसे भी जनजागरण के वैश्विक अभियान के रूप में लेना चाहिए। ❑

आत्मशुद्धि : तत्त्वज्ञान का प्रथम सूत्र

ईश्वर सर्वव्यापी है। उसका अस्तित्व जगत् के प्रत्येक कण में व्याप्त है, किंतु मनुष्य, अज्ञान और असावधानी के कारण इस सत्य को प्राय: विस्मृत कर बैठता है। वह बाहरी जगत् की क्षणभंगुर चमक-दमक में उलझकर अपनी आत्मा की वास्तविक दिव्यता को पहचान नहीं पाता। जबकि जीवन का परम लक्ष्य यही है कि हम उस परमसत्ता से तादात्म्य स्थापित करें और उसकी अनंत ज्योति का साक्षात्कार करें।

मनुष्य का जीवन तभी सार्थक होता है, जब वह आत्मबोध प्राप्त करता है। आत्मबोध का अर्थ है अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझना और यह अनुभव करना कि हमारी सत्ता ईश्वर का अंश है। यह अनुभव जीवन में नई दिशा और गहराई प्रदान करता है। आत्मा मूलत: शुद्ध, निर्मल और दिव्य है, किंतु वासनाओं, स्वार्थ और लोभ की धूल उस पर जमकर उसके तेज को ढक देती है। इस आवरण को हटाना ही साधना का पहला कदम है।

संयमित आचरण, सात्त्विक आहार-विहार, पवित्र चिंतन और निस्स्वार्थ सेवा—ये उपाय हैं, जिनसे आत्मा पुन: उज्ज्वल होती है और उसका दिव्य स्वरूप प्रकट होता है। ईश्वरप्राप्ति की दिशा में आत्मशुद्धि को ही प्रथम सूत्र माना गया है। बिना आत्मशुद्धि के साधना अधूरी है और बिना साधना के ईश्वर का साक्षात्कार संभव नहीं। शुद्ध शरीर, निर्मल मन और पवित्र विचार ही सच्ची साधना का आधार हैं।

जैसे बीज को वृक्ष बनने से पूर्व भूमि की जुताई और खाद-पानी की तैयारी आवश्यक होती है। वैसे ही साधना की भूमि आत्मशुद्धि के जल से सिंचित होनी चाहिए, अन्यथा बीज अंकुरित नहीं हो सकता।

मनुष्य का जीवन केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं तक सीमित नहीं है। वह समाज और परिवार के प्रति भी उत्तरदायी है। उसकी आत्मशुद्धि तभी पूर्ण मानी जाएगी, जब वह अपने कर्त्तव्यों का पालन निष्ठा, ईमानदारी और संवेदनशीलता के साथ करे।

माता-पिता, भाई-बहन, जीवनसाथी और संतान सबके प्रति उचित उत्तरदायित्व निभाना ही वास्तविक साधना का विस्तार है। इसी प्रकार समाज के प्रति कर्त्तव्य निभाना, दूसरों की सेवा करना और न्यायप्रियता का पालन करना भी आत्मशुद्धि का ही अंग है।

आध्यात्मिकता का मर्म केवल पूजा-पाठ या अनुष्ठान तक सीमित नहीं है। यदि जीवन में सत्य का पालन नहीं हो रहा, यदि व्यवहार में ईमानदारी और करुणा नहीं झलक रही, तो प्रार्थना और उपासना भी खोखले सिद्ध होते हैं।

सच्चा साधक वह है, जिसका संपूर्ण जीवन ही पूजा का रूप ले ले। उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक विचार और प्रत्येक व्यवहार में पवित्रता और सेवा भावनाएँ प्रकट हों। इसी संदर्भ में एक संत का प्रसंग उल्लेखनीय है।

एक युवक उनके पास ईश्वरप्राप्ति का मार्ग पूछने आया। संत ने उसे जल से भरा एक पात्र पकड़ाया और कहा—"इसे लेकर पूरे गाँव की

गलियों से होकर आओ, किंतु सावधान! इसमें से एक बूँद भी बाहर नहीं गिरनी चाहिए।''

युवक अत्यंत सावधानी से लौटा और गर्व से बोला—''गुरुदेव! देखिए, एक बूँद भी नहीं गिरी।''

संत ने शांत स्वर में पूछा—''ठीक है, पर क्या तुमने रास्ते में मंदिर देखा? क्या किसी भूखे को अन्न दिया? किसी बीमार का हाल पूछा?'' युवक झेंप गया और बोला—''नहीं गुरुदेव! मेरा ध्यान तो केवल पात्र पर था।'' तब संत ने कहा—''बेटा! यही जीवन का सत्य है। जब तक मनुष्य केवल अपनी साधना और अपने अहंकार में उलझा रहेगा, तब तक ईश्वर की निकटता संभव नहीं। ईश्वर का साक्षात्कार तभी होगा, जब तुम्हारा जीवन इतना शुद्ध हो जाए कि उसमें से न केवल एक बूँद भी व्यर्थ गिरे, बल्कि उससे दूसरों की प्यास भी बुझ सके।''

इस प्रसंग का संदेश यही है कि आत्मशुद्धि केवल अपने लिए नहीं होती, बल्कि उसका विस्तार दूसरों के कल्याण तक होना चाहिए। शुद्ध जीवन ही सच्चे ज्ञान का आधार है और यही वह पवित्र पथ है, जिस पर चलकर मनुष्य न केवल अपने आत्मकल्याण को प्राप्त करता है, बल्कि परिवार और समाज के लिए भी प्रेरणा और आदर्श बनता है। आत्मशुद्धि ही वह ज्योति है, जो अज्ञान के अंधकार को मिटाकर मानव जीवन को प्रकाशमान करती है और जो साधक इसे अपनाता है, वही ईश्वर के सान्निध्य का अधिकारी बनता है। ❑

धुंधकारी वेश्यागमन करता था और एक दिन वेश्याओं ने ही पैसे के लोभ में उसकी हत्या कर दी। अपने दुष्ट कर्मों के कारण, धुंधकारी प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ व एक दिन अपने भाई गोकर्ण के सम्मुख रोता हुआ प्रकट हुआ। गोकर्ण से उसकी यह दशा देखी न गई। उन्होंने उसकी सद्गति के लिए भागवत का पाठ किया व समीप में सात गाँठों वाला बाँस बाँध दिया।

कथा सात दिन चली प्रत्येक दिन की कथा समाप्त होते ही बाँस की एक गाँठ छूट जाती। सातवें दिन पूरा बाँस फोड़ते हुए धुंधकारी, दिव्य पुरुष के रूप में उपस्थित हुआ। निर्मल मन से अपने कर्मों का प्रायश्चित करने के कारण, सत्संग करने के कारण व भाई की करुणा के कारण धुंधकारी को मुक्ति मिली। सत्कर्मों की महिमा अपरंपार है।

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व

धरती पर स्थित सभी राष्ट्रों और उनमें निवास करने वाले समाजों की अपनी अलग-अलग संस्कृति है। संस्कृति के अनुसार ही उसका अनुसरण करने वाले व्यक्ति व समाज अथवा राष्ट्र दुनिया में अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। उदाहरण के लिए; वर्तमान में दुनिया में अमेरिकी, यूरोपीय, रूसी, चीनी, अरबी आदि अनेक संस्कृतियाँ विद्यमान हैं।

इन सबका अपना-अपना इतिहास, सभ्यता, परंपराएँ, मूल्य-मान्यताएँ और जीवनपद्धतियाँ भी हैं, परंतु इन सबमें भारतीय संस्कृति का अपना अलग महत्त्व और स्थान है। इसे विश्व की सबसे प्राचीन और गौरवशाली व श्रेष्ठ संस्कृति होने का सम्मान प्राप्त है।

वस्तुतः संस्कृति ही वह प्रेरक शक्ति है, जिससे समस्त संसार में मनुष्य जाति, मनुष्यता को विकसित करने में समर्थ हो सकी है। मनुष्य जीवन को कलात्मक रूप से विकसित करना और उसके व्यक्तित्व में उच्चतम गुणों को चरितार्थ करना ही संस्कृति का ध्येय रहा है।

संस्कृति शब्द का तात्पर्य है—शुद्धि, परिष्कार। इन भावों से संसार में जिस मनुष्य का आचरण, चिंतन और व्यवहार शुद्ध और परिष्कृत होते हैं; वही सभ्य और सुसंस्कृत समझा जाता है।

भारतीय संस्कृति में जीवन में सुसंस्कृत और उच्च बनाने वाली एक स्पष्ट जीवनपद्धति और व्यावहारिक प्रक्रियाएँ मौजूद हैं। संस्कार-परंपरा, पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा वर्णाश्रम धर्म एवं चार आश्रम—(ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) आदि ऋषि विचारों से उत्पन्न भारतीय संस्कृति की दिव्य परंपराएँ हैं, जो मनुष्य जीवन को समग्र रूप से श्रेष्ठ, सुसंस्कृत और उच्च बनाती हैं।

भारतीय समाज प्राचीनकाल से ही संस्कार पद्धति को अपनाए हुए है। इसके अंतर्गत व्यक्ति के जन्म के पूर्व से प्रारंभ होकर मृत्यु के पश्चात तक की जीवनयात्रा में प्रमुख रूप से सोलह संस्कारों की चर्चा की जाती है। इनमें से कुछ अब सामान्य प्रचलन में नहीं हैं, परंतु पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, विद्यारंभ, विवाह आदि अनेक संस्कारों का समाज में अभी भी प्रचलन है। इन संस्कारों का विज्ञान भारतीय जीवनपद्धति की मौलिक विशेषता है; क्योंकि व्यक्तित्व निर्माण संस्कारों के आधार पर ही होता है।

अच्छे व श्रेष्ठ संस्कारों से शरीर, मन व अंतरात्मा का समुचित विकास हो पाता है। चरित्रवान लोगों से समाज भी चरित्रवान बनता है तथा जैसा समाज होता है, वैसा ही राष्ट्र होता है। संस्कार-परंपरा के कारण ही भारतीय संस्कृति अपने आदर्शों, मूल्यों, नैतिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता जैसी विशिष्टताओं को सँभालने-सहेजने में सक्षम रही है। प्रेम, दया, सेवा, कर्त्तव्य, सहिष्णुता, अपनत्व जैसे मानवता को ऊँचा उठाने वाले अनेक गुणों का पोषण संस्कार-परंपरा की ही देन है।

यही कारण है कि यह संस्कारपद्धति भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों में सर्वोच्च स्थान रखती है तथा संपूर्ण विश्व मानवता को श्रेष्ठ पथ दरसाती है। भारतीय संस्कृति सही अर्थों में मानवता को पोषित कर धन्य बनाने वाली संस्कृति है। संस्कारों की ही भाँति धर्म और अध्यात्म के तत्त्व भी इस संस्कृति के मूल आधारों में सम्मिलित हैं। भारतीय

सांस्कृतिक चिंतन सर्वव्यापी, उदार, समन्वयकारी तथा कल्याणकारी भावना से ओत-प्रोत है।

यह संस्कृति धर्म के शिखर पर मानवता के उत्थान के आदर्श को स्वीकारते हुए मूल धर्म—मानव धर्म को प्रकट करती है। मानव मात्र के कल्याण और उत्कर्ष की प्रार्थना एवं शुभेच्छा हमारी विविध धार्मिक गतिविधियों, उपासना-पूजा पद्धतियों, कर्मकांड से लेकर प्रतीकों, परंपराओं आदि में सर्वत्र विद्यमान है। अन्य संस्कृतियों की तरह भारतीय संस्कृति भी मनुष्य के लौकिक जीवन हेतु कल्याणकारी विचारों की पक्षधर रही है, परंतु इन विचारों की नींव आध्यात्मिक आधारशिला पर रखी गई है।

यह उद्घोष करती है कि सभी मनुष्यों का सबसे बड़ा धर्म है उनकी कर्त्तव्यपरायणता। इसका तात्पर्य है स्व-कर्त्तव्यों का पालन। स्वधर्म का मार्ग ही व्यक्ति को उसके सर्वोच्च जीवनलक्ष्य की प्राप्ति कराने में परम साधन व सहायक बनता है। स्वधर्म एवं स्व-कर्त्तव्यों की पहचान के लिए भारतीय संस्कृति के प्रणेता ऋषियों ने वर्णाश्रम सिद्धांत तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की व्यवस्था को जीवन के साथ संयुक्त किया है।

इस तरह चार वर्ण और चार आश्रम मिलकर एक समग्र एवं सामंजस्यपूर्ण जीवनपद्धति का निर्माण करते हैं। इसमें चार वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऋषियों द्वारा इन चार वर्णों का विभाजन व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव आदि के आधार पर किया गया है न कि जन्म से प्राप्त जाति के आधार पर।

उदाहरण के तौर पर जिस व्यक्ति में ज्ञान, बुद्धि, विचार तत्त्व अधिक हों तथा वह दूसरों का मार्गदर्शन करने में समर्थ हो—ऐसी विशेषता वाला मनुष्य ब्राह्मण वर्ग में आता है। ब्राह्मण का कर्त्तव्य है लोकसेवा और सदाचरण की शिक्षा देना।

क्षत्रिय वर्ग में वे लोग आते हैं—जिनमें शारीरिक पुरुषार्थ व परिश्रम शक्ति तथा अन्यों को सुरक्षा-संरक्षण देने की शक्ति-सामर्थ्य होती है। वैश्य वर्ग में कृषि, व्यवसाय, उद्यम आदि से संपूर्ण समाज के भरण-पोषण की व्यवस्था के कार्य करने वाले लोग सम्मिलित माने जाते हैं।

इन तीनों वर्णों की सहायता-सहयोग करने वाले वर्ण को इतर रखा गया है। इन चारों वर्णों में प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व एवं जीवन की विशेषताओं व स्वभाव के अनुरूप ही किसी एक वर्ण विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। वर्ण के अनुसार ही मनुष्य को कर्त्तव्य करने का विधान है। यह वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की सुसंगत संरचना तथा सम्मिलित विकास का जीवन दर्शन है। सामाजिक जीवन के लिए ऐसा आदर्श विश्व की किसी अन्य संस्कृति में नहीं दिखाई पड़ता है।

भारतीय संस्कृति में आश्रम-व्यवस्था भी वर्ण-व्यवस्था की भाँति एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। आश्रमों की संख्या भी चार है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ये चारों आश्रम मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक की संपूर्ण जीवनचर्या और कर्त्तव्यों का पथ निर्मित करने का आधार हैं।

जीवनपद्धति के निर्माता ऋषियों ने मनुष्य की औसत आयु को सौ वर्ष मानते हुए पूरी आयु को चार भागों में विभक्त किया है। जन्म से लेकर के पच्चीस वर्ष तक की आयु को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम का उद्देश्य शास्त्र, ज्ञान, विद्या-अर्जन तथा शरीर-सौष्ठव के साथ-साथ एक स्वस्थ एवं संतुलित-विकसित व्यक्तित्व का निर्माण करना है।

पच्चीस से पचास वर्ष की आयु को गृहस्थ आश्रम के अंतर्गत रखा गया है। इसके लिए विवाह करना, धन, साधन-संपदा अर्जन करना तथा अपने कुल-वंश को आगे बढ़ाते हुए एक अच्छे नागरिक के रूप में समाज एवं राष्ट्र की प्रगति में अपना योगदान करने का दायित्व निर्धारित किया गया है।

तृतीय आश्रम वानप्रस्थ है। यह पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु वर्ग के लिए कहा गया है। मनुष्य जीवन का आधा सफर पूर्ण होने पर वानप्रस्थ में प्रवेश होता है। इसमें मनुष्य पूर्णरूपेण समाजसेवा एवं लोक-मंगल के कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है। नई पीढ़ी का अपने ज्ञान एवं अनुभवों से पथ-प्रदर्शन करना इस आश्रम का मुख्य ध्येय है।

चतुर्थ आश्रम संन्यास है। इसकी आयु पचहत्तर से सौ वर्ष कही गई है। संन्यास आश्रम मनुष्य जीवन के आत्मिक लाभ एवं मोक्ष की इच्छा से किए जाने वाले जप, तप, साधना आदि आध्यात्मिक लाभ के लिए है। इसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से आत्मविकास और अध्यात्म के मार्ग पर चलता है, भौतिक संसार एवं संबंधों से मुक्त रहते हुए जीवन-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यह आश्रम-व्यवस्था जीवन की समग्रता का अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत करती है।

संस्कार, वर्णाश्रम पद्धति के साथ ही पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के रूप में जीवनशैली एवं जीवनलक्ष्य को स्पष्ट करने वाली अवधारणा भी भारतीय संस्कृति के मौलिक तत्त्वों में सम्मिलित है।

इन सभी मूलभूत आधारों के कारण ही भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनूठापन एवं उत्कृष्टता दिखाई पड़ती है। सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में व्रत, पर्व, त्योहार, उपासना, तीर्थ, पर्यटन आदि बहुआयामी विशेषताओं एवं मूल्यों को उत्पन्न करने वाले कारक हमारी संस्कृति के मूलभूत आधार में मौजूद संस्कार आदि तत्त्व ही हैं। इन सभी ने मिलकर भारतीय संस्कृति को उदात्त, महान, श्रेष्ठ और अद्वितीय बनाए रखा है।

मनुष्य जीवन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के समस्त पहलुओं को समन्वय प्रदान करने वाली भारतीय संस्कृति, प्राचीनकाल से ही मानवमात्र के परम कल्याण की भावना से युक्त होकर विश्वमानवता का मार्गदर्शन करती आ रही है एवं करती रहेगी। ❑

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम् प्रच्छन्न गुप्तंधनं।
विद्या भोगकरीयशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसुपूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥

—भर्तृहरि नीतिशतक, 20

अर्थात विद्या ही पुरुष का सुंदर स्वरूप और अत्यंत गुप्त संपत्ति है। विद्या भोग्य पदार्थों को भी देने वाली है। विद्या कीर्ति और सुख भी देती है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विद्या विदेश जाने पर बंधुओं की तरह सहायता करती है। वही सबसे बड़ी देवता है। राजाओं के यहाँ भी धन की पूजा न होकर विद्या की पूजा होती है। इसीलिए विद्या से विहीन व्यक्ति पशु समान है।

षट्कर्म का तत्त्वदर्शन

धर्म-अध्यात्म का पथ कर्मकांड के सहारे सम्यक रीति से आगे बढ़ता है। कर्मकांड के मूल में छिपा भाव प्रधान रहता है। साधक कर्मकांड का उपयोग बैसाखियों की तरह करता है, जब तक कि इनसे जुड़ा भाव परिपक्व न हो जाए। भाव-सिद्धि के साथ इन बैसाखियों की आवश्यकता नहीं रह जाती, फिर भाव-साधना से ही कार्य चल जाता है।

गायत्री-साधना के प्रारंभिक दौर में उपासना का कर्मकांड षट्कर्म के साथ प्रारंभ होता है। कुछ लोग किसी तरह यांत्रिक ढंग से इनकी चिह्नपूजा करते हुए जप-ध्यान में बैठ जाते हैं। जिस कारण वे उपासना में प्रगाढ़ता के साथ प्रवेश नहीं कर पाते हैं और साधना के संपूर्ण लाभ से वंचित रह जाते हैं।

गायत्री-साधना से पूर्ण लाभ लेने के लिए इसके षट्कर्म से जुड़े कर्मकांड को उचित भाव-चिंतन के साथ किया जाना अभीष्ट रहता है। कहावत प्रचलित है कि देवता की पूजा देवता बनकर की जाती है। षट्कर्म साधक को इसी भावभूमि में प्रतिष्ठापित करने का उपक्रम रहता है।

पवित्रीकरण में अपने ऊपर जल छिड़ककर शारीरिक और मानसिक शुद्धता, अंदर और बाहर की पवित्रता का भाव किया जाता है। आचमन में तीन बार जल-पान के साथ वाणी, मन और अंत:करण की शुद्धि का भाव रहता है। इसके उपरांत शिखावंदन में चोटी का स्पर्श करते हुए दिव्य ऊर्जा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए मस्तिष्क शिखर पर आद्यशक्ति के तेजोमयी दिव्य रूप की प्रतिष्ठापना की जाती है।

प्राणायाम में श्वास के साथ तेजस्वी, पापनाशक एवं दिव्य प्राण को धारण कर स्वयं को हर स्तर पर प्राणवान एवं प्रखर बनाने का भाव रहता है। न्यास के अंतर्गत शरीर के विभिन्न अंगों को अभिमंत्रित जल से स्पर्श करते हुए पवित्र किया जाता है।

मुख का स्पर्श स्वाद एवं वाक्शुद्धि के निमित्त रहता है। नासिका के स्पर्श में श्वास में प्राण के नियमन का भाव रहता है। चक्षु के स्पर्श से अपनी भाव-दृष्टि में पावनता की स्थापना की जाती है।

श्रवणेंद्रिय के स्पर्श में परनिंदा, चुगली, बुराइयों आदि से बचने का भाव संकल्प रहता है। बाहु के स्पर्श के साथ श्रेष्ठ संकल्प एवं क्रियाओं से जुड़े रहने का भाव रहता है और जंघाओं के स्पर्श के साथ जीवन के निरंतर श्रेयपथ पर बढ़ते रहने का भाव सुदृढ़ होता है।

पृथ्वी-पूजन में धरती माता के प्रति कृतज्ञता भाव के साथ नमन पर स्थिरता और धैर्य का आशीर्वाद लिया जाता है। चंदन धारण करते हुए चंदन की शीतलता एवं सुगंधी की तरह संतोष एवं आनंद को धारण करने व इनके प्रसार का भाव रहता है।

इस तरह षट्कर्म के साथ शरीर और मन की शुद्धि तथा प्राण-ऊर्जा का संतुलन सधता है एवं साधक की मानसिक एकाग्रता एवं पवित्रता बढ़ती है और साधक उचित भावभूमि के साथ जप-ध्यान के अगले क्रम को ओर बढ़ता है। ❑

आत्मा से वरिष्ठ एक ही शक्ति है परमात्मा

अध्यात्म एवं परमार्थ

अध्यात्म और परमार्थ को अक्सर एक ही समझ लिया जाता है, पर वास्तव में इनमें मूल अंतर है। 'धर्म' का उद्देश्य यदि केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित रहे और सामाजिक हितों से कटकर केवल साधना या ध्यान तक सीमित हो जाए, तो वह अधूरा और आत्मकेंद्रित अध्यात्म बन जाता है।

परमार्थ का मूल उद्देश्य समाज की सेवा, दुःखी-पीड़ितों की सहायता और समाज को नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से ऊपर उठाना होता है। यदि कोई साधक केवल अपने उद्धार की चिंता करता है, पर समाज की पीड़ा से विमुख रहता है, तो उसकी साधना स्वार्थी मानी जाएगी। सच्चा अध्यात्म वह है, जो समाज में प्रेम, करुणा और सहानुभूति को जाग्रत करे।

एक विवेकशील साधक वह होता है, जो व्यक्ति के भीतर के दोषों को पहचानकर उन्हें दूर करता है और समाज के हित में जीवन समर्पित करता है।

आज धर्म और साधना के नाम पर संकीर्णता, रूढ़ियों और बाह्य आडंबरों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है जिससे न समाज को लाभ मिल रहा है न आत्मा को शांति। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि अध्यात्म को समाजोपयोगी परमार्थ से जोड़ा जाए। वेदों में भी यह स्पष्ट कहा गया है—**'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।'** अर्थात मनुष्य ऐसा बने, जो स्वयं भी दिव्य गुणों से युक्त हो और दूसरों में भी दिव्यता जगाए। अतः धर्म और अध्यात्म की दिशा में जो प्रयास हों, वे केवल अपने मोक्ष तक सीमित न होकर समाज के व्यापक कल्याण के लिए होने चाहिए। तभी वह सच्चे अर्थों में परमार्थ कहलाएगा।

सच्चे अध्यात्म का उद्देश्य आत्मकल्याण तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह व्यापक सामाजिक उत्थान से जुड़ा होता है। जो व्यक्ति केवल अपने मोक्ष की चिंता करता है और दूसरों के दुःख-दरद की उपेक्षा करता है, वह अध्यात्म का सतही और संकीर्ण रूप अपनाता है।

यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों से विमुख होकर केवल साधना करता है तो वह समाज में असंतुलन उत्पन्न करता है। ऐसे लोग व्यक्तिगत रूप से चाहे जितने भी धर्मनिष्ठ क्यों न दिखें, पर वे समाज की आवश्यकताओं से कटे रहते हैं। वास्तव में यह परमार्थ नहीं, बल्कि आत्मकेंद्रित दृष्टिकोण है। विपत्ति और अभावों से घिरे लोगों के लिए सहानुभूति और सहायता का भाव रखना ही सच्चा अध्यात्म है।

समाज के दुर्बल वर्गों, पीड़ितों, महिलाओं और वंचितों के प्रति सेवा-भावना ही परमार्थ का वास्तविक रूप है। जिन परिवारों में संयम, सेवा और त्याग की भावना नहीं है, वहाँ अधर्म और नैतिक पतन प्रवेश कर जाते हैं। अतः केवल पूजा-पाठ या प्रवचन करना ही अध्यात्म नहीं है, जब तक वह व्यवहार में समाज के लिए उपयोगी न बने।

वेदों और उपनिषदों में भी यह कहा गया है कि सत्य को जानना, उसे जीना और समाज के लिए उपयोगी बनना ही धर्म है। केवल आत्मा की मुक्ति की कामना नहीं, बल्कि सबके उद्धार की भावना ही सच्ची साधना है।

इसलिए आज आवश्यकता है कि अध्यात्म का सही अर्थ समझा जाए और परमार्थ के रूप में उसे समाज-कल्याण से जोड़ा जाए। तब ही धर्म, संस्कृति और मानवता की रक्षा संभव है।

केवल देवालयों में पूजा-पाठ करने या उपदेश देने से अध्यात्म की सिद्धि नहीं होती। यदि साधना का केंद्र केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित है और उसमें दूसरों के कल्याण की कोई भावना नहीं तो वह अधूरी है। धर्म और अध्यात्म तभी सार्थक हैं, जब वे समाज के उत्थान में योगदान दें।

धार्मिक व्यक्ति यदि अपने कर्त्तव्यों से विमुख होकर केवल एकांतिक साधना में लगे रहें तो वह समाज की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते। उनकी साधना आत्मकल्याण तो दे सकती है, पर जनकल्याण नहीं। जो साधक दूसरों की पीड़ा को अपना समझे और उसे दूर करने के लिए कुछ करे—वही सच्चा साधक है।

शास्त्रों में भी यही कहा गया है कि परोपकार ही धर्म है। सच्चा अध्यात्म वही है, जो निर्धनों, पीड़ितों, उपेक्षितों और शोषितों के जीवन में आशा की किरण बने। जो धर्मजन्य आचरण दूसरों को प्रेरणा दे, वही सच्चा अध्यात्म है। नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी से रहित साधना केवल एक आत्मकेंद्रित क्रिया बन जाती है; जबकि परमार्थ जिसमें त्याग, सेवा और करुणा हो, वही अध्यात्म को पूर्ण बनाता है।

वेदों और उपनिषदों ने भी स्पष्ट किया है कि धर्म का उद्देश्य केवल पूजा या यज्ञ नहीं, बल्कि **'सर्वजन हिताय'** और **'सर्वजन सुखाय'** होना चाहिए। इसलिए आज की आवश्यकता है कि धर्म को केवल पूजा-पद्धति न माना जाए, बल्कि वह जीवन में व्यावहारिक रूप से उतरे, दूसरों की मदद, समाज की भलाई और समष्टि के कल्याण के रूप में—तभी वह परमार्थ कहाएगा। ❑

एक व्यक्ति ने तंत्र-साधना की, परिणामस्वरूप उसे प्रेत सिद्ध हो गया। प्रेत बोला—"मुझे जल्दी से करने को काम दो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।" घबराकर उस व्यक्ति ने प्रेत को काम बताने शुरू किए, पर प्रेत वो सारे काम पलक झपकते पूरा कर देता।

अब वह व्यक्ति बहुत घबराया और भागा-भागा अपने गुरु के पास पहुँचा तो उसके गुरु बोले—"वत्स! इसीलिए आंतरिक परिष्कार की गायत्री-साधना को श्रेष्ठ बताया गया है। निरर्थक सिद्धियों की दौड़ मात्र जी का जंजाल बनती है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपने शिष्य से कहा—"तुम प्रेत को लच्छेदार बाल सीधा करने को दे दो।" अब प्रेत इसी काम में व्यस्त हो गया। वह जितनी बार बाल सीधा करता, बाल फिर टेढ़ा हो जाता। प्रेत से जान छूटने पर तंत्रसाधक को भान हुआ कि इसी कारण जीवन के परिमार्जन की साधना को ही सच्ची सिद्धि कहा गया है, भूत-प्रेत साधने को नहीं।

पर्व विशेष-कबीर जयंती

समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोई

परमात्मा में विश्वास है तो उसे कहीं बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। वह समान रूप से सबके भीतर अंतरात्मा के रूप में विद्यमान है। भीतर स्थित इस परमात्मा को देखने के लिए जो दृष्टि आवश्यक है, उसी दृष्टि की बात संत कबीर कहते हैं। उनकी कालजयी वाणी मनुष्य के अंदर छिपी दिव्यता को उभारने, मानवता को झंकृत करने व ईश्वरत्व को इसी जीवन में खोज लेने का आह्वान करती है।

शास्त्रों में भी उक्ति है—**यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे** अर्थात जो ब्रह्मांड में है, वह सब कुछ पिंड में है, परंतु इस बोध को कबीर की भावधारा जब छूती है तो एक निराले अंदाज में इस बोध का संकेत करती है—**'बूँद जो पड़ी समुद्र में, सो जाने सब कोई, समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोई।'**

अपने रहस्यवादी विचारों को भक्ति-भावना में डुबोकर विलक्षण रूप से औपनिषदिक अद्वैत को प्रकट करने वाले विलक्षण संत हैं—कबीर। काव्य रस में गुँथे हुए उनके प्रखर विचारों ने तत्कालीन समाज की विसंगतियों का कठोरता से विरोध करते हुए मानव मात्र को जीवन जीने का सच्चा मार्ग दिखाया है।

मानव जीवन में प्रेम, समानता, एकता और ईश्वर-बोध की महान प्रेरणा देने वाले संत कबीर की जीवनयात्रा भी विलक्षण ही कही जा सकती है। उनका जन्म पुण्यभूमि काशी-क्षेत्र में होने का उल्लेख मिलता है। मुख्य रूप से उनका कार्य-क्षेत्र भी काशी, बनारस का क्षेत्र ही कहा गया है। जुलाहे परिवार में पालन-पोषण होने के कारण वे स्वयं भी जुलाहे का ही काम करते रहे। औपचारिक शिक्षा भी प्राप्त नहीं हो सकी थी।

उनकी ही प्रसिद्ध पंक्ति है—**'मसि कागज छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ'** परंतु कबीर की अंतर्दृष्टि अत्यंत निर्मल और प्रखर है। पढ़े-लिखे न होने के बावजूद उनका चिंतन ज्ञान-क्षेत्र के उच्चतम सोपानों को प्राप्त करता है। उनकी रहस्यात्मक वाणी और व्यंग्यात्मक शैली ने समस्त बौद्धिक जगत् को विस्मित किया है।

उनकी दिव्य वाणियों का संग्रह 'बीजक' के नाम से अत्यंत प्रसिद्ध है। रमैनी, सबद और साखी—इसके तीन भाग हैं। इन तीनों में साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य, अनेक लोकभाषाओं का सम्मिश्रण तथा लय, छंद आदि का अद्भुत संयोजन प्रकट हुआ है। भाषा क्षेत्रीय, सहज-सरल होने पर भी अत्यंत सुदृढ़ और स्पष्टवादिता से परिपूर्ण है।

उनके चिंतन का क्षेत्र सनातन की सर्वोच्च दृष्टि वेदांत के ज्ञान के आधार का सृजक है। इसी से अभिव्यक्त अद्वैत भावना सहज रोचक शब्दावली में अभिव्यक्ति प्राप्त कर जन-जन में प्रिय बन जाती है। वेदांत के सिद्धांत से निस्सृत निर्गुण तत्त्व तथा सर्वत्र सार में अद्वैत की भावना ही उनके विचार-चिंतन को ऊँचाई के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ करती है।

यही भावना जब जनसमाज के कल्याण की दिशा में प्रवृत्त होती है तो तत्कालीन समाज में फैले धर्म-संप्रदाय, मत-मतांतरों की विडंबनाओं, अंधविश्वासों, रूढ़ियों को चीरती हुई समूचे जनसमुदाय में पारस्परिक एकता, अपनत्व और मानवीय प्रेम की पावन सरिता बन जाती है।

संत कबीर की चिंतन भावधारा के तट पर जो कोई भी भक्तिभाव से, श्रद्धा से पहुँचता है, वह स्वत: ही मानवता, प्रेम, दया, देवत्व और शांति से अभिसिक्त हो धन्य हो उठता है। सत्य, अहिंसा, सदाचार, सद्भावना आदि मानवीय मूल्यों के उपासकों के लिए कबीर की वाणी सदैव वरेण्य और प्रासंगिक रही है व आगे भी रहेगी। वर्तमान समय में भी उनके चिंतन सूत्र अत्यंत प्रेरक, व्यावहारिक व जीवन का समुचित मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं।

उनकी वाणी की यही विशेषता है कि उनकी रचनाओं का प्रत्येक चरण जीवन की एक नई शिक्षा, दिशा, दृष्टि और प्रेरणा को उत्पन्न करता है। जिस मानवता और मानवीय जीवन की सुखद कल्पना आज सारा विश्व करता है, कबीर ने इसका उद्घोष अपने जीवनकाल में ही कर दिया था। अद्वैत के धरातल पर समता, एकता और मानवता के स्वरों को गुंजायमान करने वाले कबीर अपनी तरह के इकलौते संत कवि हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा 29 जून, सोमवार को इस वर्ष संत कबीर की जयंती है। देश-विदेश, हिंदू-मुसलिम, सर्वत्र उनके भक्त, अनुयायी मौजूद हैं। देश-काल-परंपरा के अनुसार सभी इस दिन को विशेष रूप से मनाते हैं। कबीरपंथी और सिख समुदाय में इस दिन का महत्त्व तो सर्वाधिक रहता ही है, परंतु संपूर्ण जनसमाज के हृदय में भी कबीर के प्रति श्रद्धा, भक्ति के भाव प्रदीप्त हो उठते हैं।

उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अगाध समुद्र की भाँति व्यापक है, परंतु सागर से मोती की भाँति यथासंभव प्रेरणा एवं संदेश ग्रहण करने का सुअवसर हम सभी के लिए आया है। इस अवसर पर उनकी एक वाणी स्मरण आती है—

कथणीं कथी तौ क्या भया,
जे करणों नां ठहराई।
कालबूत के कोट ज्यूँ,
देवतही ढहिं जाई॥

अर्थात इस संसार में बातें कहने का कोई अर्थ नहीं है यदि कर्म-आचरण में वह नहीं है। जिस प्रकार कंगूरा बनाने के लिए एक कच्चा आधार (साँचा) तैयार किया जाता है, पर कंगूरे के बनते ही वह हटा दिया जाता है—इसी प्रकार मनुष्य का कथन भी यदि कर्म के अनुरूप नहीं है तो निरर्थक हो जाता है।

वाणी और कर्म में सामंजस्य न होना ही मनुष्य जीवन के पतन का कारण है। दूसरों को उपदेश देने से पहले स्वयं उस पर आचरण करने की सीख कबीर प्रत्येक को देते हैं। इस चिंतन में दूसरा मर्म कबीर का यह भी है कि वाणी की अपेक्षा कर्म श्रेष्ठ है। कहते रहने से अच्छा है कि जीवन में कुछ आचरण करें। इसी प्रकार एक उपदेश मन की काम-वासनाओं, इच्छाओं को दूर करने का भी है।

कबीर कहते हैं कि जो लोग विषय-वासनाओं के वश में हैं, वे जीवन में पथभ्रष्ट हैं। ऐसे लोगों को कभी मुक्ति, शांति का लाभ नहीं हो सकता। विषयों से अनुरक्ति में जीवन अंतत: समूल नष्ट ही हो जाता है। अत: इसका उपाय है सच्चे मन से, प्रेम-भावना से चित्त को ईश्वर में लगाए रहना। यही सहज-योग और शांति-मुक्ति का सरल मार्ग है। कबीर के अनुसार व्यक्ति समाज और परमात्मा को प्रसन्न करना चाहता है तो उसका भी यही उपाय है कि वह सच्चे मन से कर्म करे।

सच्चे मन का तात्पर्य है सत्य को समझकर कर्म करना। असत्य को सत्य समझकर कर्म करना ही मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है। सत्य यही है कि कर्मों का फल निश्चित है। जो जैसे कर्म करता है, उसे वैसे परिणाम भोगने पड़ते हैं। साहूकार की उधारी चुकाने के समान प्रत्येक मनुष्य को कर्मों का हिसाब देना पड़ता है।

मनुष्य यदि इस सत्य को समझ ले तो वह कभी पथभ्रष्ट नहीं हो सकता। मन के सत्य में

प्रतिष्ठित नहीं होने के कारण ही जीवन में, समाज में और धर्म-संप्रदायों में लोग भाँति-भाँति के आडंबर और पाखंड रचते हैं और उन्हीं में उलझकर नष्ट हो जाते हैं। मन शुद्ध नहीं होने से शास्त्र और शिक्षा भी कोई काम नहीं आती, सब बेकार ही जाता है। अतः सहज योग और सच्ची भक्ति का मार्ग ही सबके लिए उत्थान और कल्याण का पथ है। कबीर सभी से इसी मार्ग पर चलने का आह्वान करते हैं।

कबीर का प्रत्येक वचन सामान्य जीवन की समस्याओं और उनके समाधान से ओत-प्रोत है। जीवन के आदर्श, भक्ति-भावना, सामाजिक समरसता, धार्मिक समन्वय तथा जीने का सीधा सरल और सच्चा मार्ग आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कबीर के काल में रहा और आगे हर युग में रहेगा। वर्तमान के भोगवादी जीवन और तनावपूर्ण जिंदगी के संकटों से उबरने के लिए कबीर का स्पष्ट संदेश है—आत्मसंयम, निर्भीकता, प्रेम, समर्पण और सच्चाई।

पीड़ित मानवता को सही मार्ग पर चलाने और सार्थक जीवन-दृष्टि प्रदान करने वाले कबीर के वचन एवं विचार उन्हें इस धराधाम पर जन्मी महान संत परंपरा के विलक्षण एवं एक अमर नायक के रूप में स्थापित करते हैं।

उनके क्रांतिकारी, सरस, सुबोध एवं ज्ञानदीप्त उपदेशों को किसी काल विशेष या क्षेत्र, समाज, संप्रदाय, धर्म आदि से बाँधकर कदापि नहीं देखा जा सकता है। वे समान रूप से व्यक्ति एवं समाज की भ्रमित दिशा व दृष्टि को परिवर्तित कर सही मार्ग की प्रेरणा देने में समर्थ हैं। इन्हीं प्रेरणाओं को आत्मसात् करने का सुअवसर लेकर उनकी जयंती का यह पर्व प्रस्तुत होता है। ❑

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्, 3/13

अर्थात अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला वह अंतर्यामी परमात्मा सदा ही मनुष्यों के हृदय में सम्यक रूप से स्थित है। वह परमेश्वर मन का स्वामी है और निर्मल हृदय से प्रत्यक्ष होता है। जो इस परब्रह्म परमेश्वर को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

ध्यानयोग : आत्मा की अमृत यात्रा

ध्यानयोग मनुष्य के जीवन का केवल एक अभ्यास या साधना मात्र नहीं है, बल्कि यह आत्मा की अमृत यात्रा है। यह साधना हमें हमारे वास्तविक स्वरूप से जोड़ती है और यह अनुभव कराती है कि हम केवल शरीर और मन तक सीमित नहीं, बल्कि एक असीम चेतना का अंश हैं। विज्ञान ने भी अब यह स्वीकारना आरंभ कर दिया है कि ध्यानयोग की गहराई में उतरते ही शरीर और मस्तिष्क में अद्‌भुत परिवर्तन घटित होते हैं। हृदय की धड़कन धीमी पड़ जाती है, श्वास सामान्य से कहीं अधिक शांत हो जाती है और मस्तिष्क की तरंगें एक विशेष लय में व्यवस्थित हो जाती हैं।

सामान्य स्थिति में जहाँ बीटा तरंगें अस्थिरता और व्याकुलता का प्रतीक होती हैं, वहीं ध्यान में अल्फा और थीटा तरंगें प्रबल हो उठती हैं। यही तरंगें मनुष्य को गहन शांति, स्थिरता और सृजनात्मकता का अनुभव कराती हैं, परंतु ध्यान का महत्त्व केवल शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है। यह साधना आत्मा के गहन आयामों का द्वार खोलती है।

ध्यान का अभ्यास करते-करते साधक भीतर की उस ज्योति को अनुभव करने लगता है, जिसे शास्त्रों में 'अंतर्ज्योति प्रकाश' कहा गया है। यही वह ज्योति है, जो अज्ञान का अंधकार मिटाकर आत्मा को उसकी वास्तविक पहचान कराती है। ध्यानयोग हमें यह सिखाता है कि संसार की परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, भीतर की स्थिरता और शांति बनाए रखना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

जो साधक इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह न केवल स्वयं संतुलित रहता है, बल्कि अपने आस-पास भी शांति, करुणा और सकारात्मक ऊर्जा का वातावरण निर्मित करता है। यही कारण है कि ध्यान को 'जीवन का विज्ञान' और 'मोक्ष का मार्ग' दोनों कहा गया है। इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ ध्यान और आत्मनियंत्रण ने व्यक्तियों को दिव्यता से जोड़ दिया।

एक प्रसंग है कि एक तपस्वी राजा के दरबार में भिक्षा माँगने पहुँचे। राजा ने विनम्रतापूर्वक कहा—"आप जो चाहें माँग सकते हैं।" तपस्वी ने उत्तर दिया—"महाराज! मुझे अपनी सबसे प्रिय वस्तु दीजिए।" राजा कुछ देर मौन रहे और फिर बोले—"मुझे सबसे प्रिय मेरा प्रजाहित है।"

तपस्वी मुस्कराए और आशीर्वाद देते हुए बोले—"महाराज! अब आपका जीवन केवल राजसत्ता तक सीमित नहीं, बल्कि लोक-मंगल का साधन बन चुका है।" ध्यानयोग की यही महिमा है। यह हमें हमारी सीमित पहचान से उठाकर अनंत की ओर ले जाता है।

साधक जब ध्यान की गहराइयों में प्रवेश करता है तो उसे यह अनुभव होने लगता है कि समस्त सृष्टि में एक ही चेतना प्रवाहित है और वह चेतना ही उसका अपना आत्मस्वरूप है। इस स्थिति को ही वेदों ने **'अहं ब्रह्मास्मि'** और उपनिषदों ने **'तत्त्वमसि'** कहा है।

विज्ञान के उपकरण इन सूक्ष्म अनुभवों को भले ही संख्याओं और तरंगों के रूप में मापने का प्रयास करें, किंतु ध्यान के वास्तविक परिणाम को तो साधक ही जान सकता है। वह परिणाम है—मन की शांति, हृदय की करुणा और आत्मा का प्रकाश। यही ध्यानयोग की पूर्णता है। ❑

चरित्र-निर्माण का महत्त्व

चरित्र क्या है—चरित्र व्यक्तित्व का सार है। यह कालजयी व्यक्तित्व का आधार है, जिसका विरोधी भी लोहा मानते हैं। चरित्र ही विकट परिस्थितियों में व्यक्ति का संबल बनता है और उसे कठिन परिस्थितियों से बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त करता है। चरित्रबल के आधार पर ही व्यक्ति अग्नि-परीक्षाओं के दौर से गुजरते हुए कुंदन बनकर बाहर निकलता है और काल के भाल पर अपने अपराजेय व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ जाता है।

युगों तक पीढ़ियाँ चरित्रवान व्यक्तित्व को देखकर जीवन के विकट पलों में पार होने के लिए आवश्यक साहस, सूझ एवं प्रेरणा पाती हैं। कहावत प्रख्यात है कि यदि 'धन गया तो समझो कि कुछ नहीं गया, यदि स्वास्थ्य गया तो समझो कि कुछ गया और यदि चरित्र गया तो समझो कि सब कुछ चला गया।' यह उक्ति चरित्र के महत्त्व को स्पष्ट करती है कि जीवन में चरित्र महत्त्वपूर्ण है।

वस्तुत: चरित्र जीवन की सबसे मूल्यवान संपदा है, जिसके आधार पर कुछ भी हस्तगत किया जा सकता है और यह जीवन की स्थायी सफलता एवं सुख-शांति को प्राप्त करने का सुनिश्चित आधार है। अपने पुरुषार्थ एवं भाग्य के आधार पर व्यक्ति जीवन में सफलता के शिखर पर तो पहुँच सकता है, लेकिन वहाँ टिका रहना चरित्रबल के आधार पर ही संभव होता है।

चरित्र के अभाव में व्यक्ति को शिखर से नीचे लुढ़कते देर नहीं लगती। चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण आएदिन समाज में बुलंदियों के शिखर पर आरूढ़ हस्तियों को पतन-पराभव के गर्त में गिरते देखा जा सकता है, जो घटनाएँ समाचारों की सुर्खियाँ बनती रहती हैं।

चरित्र-निर्माण की आवश्यकता—आज परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व में हम चारों ओर अशांति, अराजकता, टूटन, विखंडन, अस्थिरता, आतंक एवं वैमनस्य की जब हाहाकार भरी स्थिति के दर्शन करते हैं तो इसके मूल में चारित्रिक ह्रास ही मूल कारण रहता है। समाज में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाधड़ी, भेदभाव, ईर्ष्या-द्वेष, बुराइयाँ आदि चरित्र-निर्माण के अभाव में उपजे संकट हैं।

इन सबसे उबरने का एक ही उपाय है—चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया के प्रति आस्था एवं निष्ठा का जागरण। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में चरित्र की प्रस्थापना।

समाज में चरित्र को व्यक्ति के मूल्यांकन की कसौटी बनाया जाए और चरित्रवान व्यक्तियों को प्रोत्साहन एवं महत्त्व मिले। चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने से पूर्व, इसके अर्थ एवं आयामों को समझना उचित होगा।

चरित्र के निहितार्थ—शील, संयम, सदाचारयुक्त, आत्मानुशासित जीवन

—आर्थिक ईमानदारी, अपनी मेहनत की कमाई संग जीवनयापन

—अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करता कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन

—भाव-संवेदना से युक्त सहयोग-सहकार भरा सेवाभावी जीवन

—औचित्य के पक्ष में जीने, जूझने व संघर्ष करने वाला आदर्शनिष्ठ जीवन

—मानवीय उच्चतम संभावनाओं से युक्त ध्येयनिष्ठ एवं ईश्वरपरायण जीवन।

इसके साथ मन, वचन एवं कर्म की एकता— चरित्र-निर्माण से जुड़े तत्त्व हैं। आदर्शवादिता, दूरदर्शिता, स्वयं की त्रुटियों को स्वीकार करने की ईमानदारी, इनको दूर करने की त्वरा, सत्यनिष्ठा, धर्मपरायणता, निरहंकारिता, शालीनता एवं विनम्रता। इस तरह चरित्र आत्मानुशासन, दृढ़ निश्चय, कर्त्तव्यनिष्ठा, दायित्वबोध युक्त आचरण-व्यवहार है, जो समाज में व्यक्ति की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को पुष्ट करता है। व्यक्ति को सम्मान, आत्मसंतोष एवं दैवी अनुग्रह का अधिकारी बनाता है। वस्तुतः चरित्र व्यक्तित्व का सार है, जो व्यक्ति को एक विशिष्ट पहचान दिलाता है।

चरित्र-निर्माण का महत्त्व—चरित्र व्यक्तित्व रूपी भव्य भवन की नींव है। यह आधार जितना सुदृढ़ होगा, सफलता एवं उत्कर्ष उतना ही टिकाऊ एवं स्थायी होगा। चरित्र ही व्यक्ति को सही-गलत की स्पष्ट समझ देता है, जिसके आधार पर उचित निर्माण क्षमता के साथ जीवन श्रेष्ठता के पथ पर अग्रसर होता है।

चरित्र-निर्माण के आधार पर ही व्यक्ति एक नैतिक जीवन जीता है, जिसमें आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास का भाव विकसित होता है। चरित्र निष्ठा के आधार पर ही रिश्तों में परस्पर सम्मान एवं विश्वास का भाव पोषित होता है। संवेदी, संवाद संभव होता है, जो टिकाऊ संबंध का आधार बनता है।

चरित्र ही जीवनलक्ष्य को सार्थकता से जोड़ता है, व्यक्तित्व के मर्म को स्पर्श करते हुए व्यक्ति के समग्र विकास को सुनिश्चित करता है। चरित्र ही व्यक्ति को भाव-संवेदना से युक्त बनाता है। संकीर्ण स्वार्थ एवं क्षुद्र अहं से ऊपर उठकर जीना सिखाता है और सामाजिक रूप से एक जिम्मेदार एवं जवाबदेह नागरिक तैयार करता है।

चरित्र ही एक आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो आगे चलकर श्रेष्ठ विद्यार्थी, आदर्श शिक्षक एवं जिम्मेदार नागरिक के रूप में समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान देते हैं। शिक्षा के साथ विद्या के प्रयोग चरित्रवान व्यक्तियों के आधार पर ही संभव होते हैं। परिवार में संस्कारवान पीढ़ी और समाज के लिए आदर्श नागरिक इसी आधार पर तैयार होते हैं।

भाव-संवेदना से युक्त चरित्रवान व्यक्ति ही राष्ट्र के सच्चे कर्णधार और विश्व नागरिक हो सकते हैं। ऐसे ही व्यक्ति 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक हो सकते हैं। चरित्रवान व्यक्ति की आभा, सुगंध एवं दीप्ति दसों दिशाओं में व्याप्त होती है और ये ही सही माने में सकारात्मक परिवर्तन के संवाहक होते हैं।

चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया एवं सोपान— चरित्र-निर्माण एक जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है। इसके लिए व्यक्तित्व के हर पक्ष का सुधार करते हुए गहनतम स्तर पर परिष्कार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में 'आश्चर्य नहीं कि चरित्र का निर्माण हजार ठोकरें खाने के बाद होता है। यह एक समयसाध्य एवं कष्टसाध्य प्रक्रिया है, लेकिन इसकी फलश्रुति शानदार एवं बेमिसाल रहती है।'

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में—'चरित्र और कुछ नहीं, व्यक्ति की आदतों का समुच्चय भर है। हम जैसा सोचते हैं, वैसा कर्म करते हैं, उसी के अनुरूप हमारी आदतें बनती हैं और यही आदतें हमारे चरित्र का निर्धारण करती हैं। चरित्र से ही हमारी नियति या भाग्य तय होता है। अतः चरित्र हमारे विचार एवं इनसे प्रेरित कर्मों की परिणति है। अपने चिंतन एवं भाव की पावनता के आधार पर हम अपने संस्कारों का परिष्कार करते हुए उज्ज्वल चरित्र की नींव रख सकते हैं।'

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में—'चरित्र के गठन के लिए हमें संपूर्ण जीवन, कार्य व्यवहार, विचार मनोभाव की निर्मलता, शुद्धि पर कार्य करना पड़ता है।' सेवा, दया, परोपकार, उदारता, त्याग, शिष्टाचार, सद्व्यवहार जैसे सद्गुणों का अभ्यास चरित्र के बाह्य अंग हैं, तो सद्भाव, सद्विचार, उत्कृष्ट चिंतन, नियमित, व्यवस्थित जीवन, शांत-गंभीर सुलझी हुई राग-द्वेषहीन मनोभूमि चरित्र के परोक्ष अंग हैं। संक्षेप में आत्मसंयम, आत्मत्याग और अध्यवसाय चरित्र के महत्त्वपूर्ण आधारस्तंभ हैं।

अपने विचार, मनोभाव, चेष्टाओं पर अपना नियंत्रण रखना, बुराइयों को छोड़कर अच्छाइयों को महत्त्व देना आत्मसंयम है। दूसरों के हित-कल्याण के लिए अपने सुख और लाभ का ध्यान न रखकर पूरा-पूरा प्रयत्न करना आत्मत्याग है। व्यक्तित्व शोधन, परिमार्जन एवं अपने लक्ष्य-पथ पर आगे बढ़ने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना अध्यवसाय है।

आत्मसंयम, आत्मत्याग एवं अध्यवसाय की इस त्रिवेणी के संगम पर ही चरित्र गठन की पावन प्रक्रिया संपन्न होती है। व्यावहारिक जीवन में चरित्र-निर्माण के संदर्भ में कुछ बाधक तत्त्वों का बोध आवश्यक है।

अत्यधिक सुख-सुविधायुक्त भोगप्रधान जीवनशैली, कामचोरी, बिना श्रम की हराम की कमाई, भोग-विलासी वृत्ति, फजूलखर्ची, गलत संग-साथ, मोबाइल का अत्यधिक उपयोग, इंद्रिय-असंयम, अस्त-व्यस्त एवं असंतुलित जीवनचर्या, नकारात्मक एवं दूषित चिंतन, बिगड़ी आदतें, ओछे आदर्श चरित्र को दुर्बल बनाते हैं।

इनके स्थान पर स्व-अनुशासन, मितव्ययिता, मिताहार, इंद्रिय संयम, सुव्यवस्थित एवं संतुलित जीवनचर्या, सकारात्मक चिंतन, श्रेष्ठ आदर्श एवं अच्छी आदतें चरित्र को सशक्त बनाते हैं। नित्य महापुरुषों की जीवनियों एवं प्रेरक पुस्तकों का स्वाध्याय एवं अच्छी संगत इसमें बहुत सहायक रहते हैं और नित्य आत्मचिंतन एवं स्व-मूल्यांकन के साथ अपने चिंतन-चरित्र एवं व्यवहार का निरंतर सुधार-परिष्कार करते हुए चरित्र-निर्माण का उद्देश्य क्रमिक रूप से पूर्ण होता है। ❑

आचार्य महीधर बीमार पड़े। बीमारी में वे भगवान से स्वास्थ्य लाभ का वर माँगने लगे। बीमारी ठीक हो गई। कुछ अवधि बाद उन्हें फिर बीमारी हुई। उन्होंने फिर से भगवान की प्रार्थना करनी प्रारंभ की तो भगवान प्रकट हुए व बोले—"वत्स! तू अश्वलोमा वैद्य के पास जाकर चिकित्सा करा। तुझे धरती पर जनकल्याण करने भेजा था या मनोकामनाएँ पूरी कराने।"

आचार्य महीधर को ग्लानि हुई। उन्हें लगा कि जो काम एक वैद्य कर सकता था, उसके लिए भगवान को कष्ट देने चला था? उन्होंने मनोकामनाएँ त्यागीं व लोक-कल्याण के पथ पर जुट गए। लोकसेवी के लिए यही पथ श्रेष्ठ है।

साधना से ही मिलती है सिद्धि

पदार्थों की तरह मनुष्य का व्यक्तित्व भी कच्चा और पक्का होता है। कच्चा व्यक्तित्व असंवेदनशील, अव्यवस्थित और दिशाहीन होता है; जबकि परिष्कृत व्यक्तित्व सजग, अनुशासित और प्रभावशाली बन जाता है। ऐसे उत्कृष्ट स्तर पर पहुँचने के लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना ही वह प्रक्रिया है, जो साधारण व्यक्तियों को असाधारण बना देती है।

प्रकृति में भी यह नियम स्पष्ट दिखाई देता है। कच्चे पौधे जंगलों में अपने हाल पर उगते रहते हैं, पर जब उन्हें किसी कुशल माली के हाथों समर्पित किया जाता है, तो उन्हें छाँटा, सींचा और सजाया जाता है। नतीजन वे सुंदर बाग-बगीचों का हिस्सा बनकर लोगों को आकर्षित करते हैं। इसी तरह यदि मनुष्य अपने जीवन को उद्देश्यपूर्ण बना कर किसी साधना-पथ पर चलता है, तो उसका जीवन भी आकर्षक और आदर्श बन जाता है। वास्तव में मानव जीवन की दिशा और दशा का निर्धारण साधना से ही होता है।

जीवन में जो कुछ भी उच्च और विशिष्ट है, वह कठोर आत्मानुशासन, मनोबल और तप से ही प्राप्त होता है। जो मनुष्य अपने जीवन को सजाने-सँवारने का प्रयत्न करता है, वह अंततः समाज और संस्कृति में प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

साधना का अर्थ केवल धार्मिक क्रियाओं तक सीमित नहीं है। इसका अर्थ है—अपने भीतर की कमजोरियों को पहचानकर उन्हें दूर करना और आत्मबल, संयम, विवेक और सेवा जैसे सद्गुणों को जीवन में उतारना। जो ऐसा करता है, वही सच्चे अर्थों में सिद्ध पुरुष कहलाता है। ☐

एक ऋषि से उनके शिष्यों ने पूछा—"गुरुवर! क्या व्यक्ति से प्रेम करने के लिए समष्टि से प्रेम करना जरूरी है?"

ऋषि ने उत्तर दिया—"समष्टि से प्रेम किए बिना हम व्यक्ति से कैसे प्रेम कर सकते हैं? सारे विश्व का यदि एक अखंड रूप से चिंतन किया जाए तो वही ईश्वर है, और उसे पृथक-पृथक रूप से देखने पर वही दृश्यमान संसार है—व्यष्टि है। विराट ब्रह्म, अखंड चिंतन वह इकाई है, जिसमें लाखों छोटी-छोटी इकाइयों का योग है। उसी को ध्यान में रखने से सारे विश्व को प्रेम करना संभव है।"

यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान

यज्ञ भारतीय संस्कृति का केंद्रीय तत्त्व है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत जो भी संस्कार होते हैं, यज्ञ उनके केंद्र में रहता है। शास्त्रों के अनुसार यज्ञ सृष्टि की धुरी है। यज्ञ का तात्त्विक अर्थ है परोपकार भाव के साथ किया गया श्रेष्ठ कर्म, निष्काम कर्म। सूर्य, चंद्रमा से लेकर तारामंडल एवं सृष्टि के अन्य सभी घटक इसी यज्ञीय भाव के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं, जिसके बिना सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इसी यज्ञ दर्शन के तत्त्व का व्यावहारिक प्रशिक्षण ऋषियों द्वारा रचे गए अग्निहोत्र—हवनरूपी कर्मकांड के रूप में सामने आता है, जिसे सामान्यतया यज्ञ की संज्ञा दी जाती है। यहाँ एक कुंड की प्रज्वलित अग्नि में वनौषधियों से युक्त हवन सामग्री की मंत्रोच्चारण के साथ आहुतियाँ दी जाती हैं। ऋषियों द्वारा सृजित इस दृश्य-श्रव्य विधा का अपना एक गहन ज्ञान-विज्ञान है। एक समग्र जीवन दर्शन के साथ यह स्वयं में एक संपूर्ण चिकित्सापद्धति भी है।

वैदिक काल से ही गायत्री-उपासना के साथ यज्ञ के युग्म को पूरक माना गया है। आश्चर्य नहीं कि वैदिक संस्कृति में गायत्री को माता एवं यज्ञ को पिता की संज्ञा दी गई। इस युग में गायत्री-यज्ञ के प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव के शब्दों में, यज्ञ अपने में एक समर्थ और समग्र दर्शन है।

इसकी सरल और सुबोध प्रेरणाओं में मनुष्य को उदार एवं उदात्त बनाने के वे सारे तत्त्व मौजूद हैं, जो संसार के किसी अन्य दर्शन में नहीं हैं। यही कारण है कि यज्ञीय भाव को भारतीय संस्कृति का पिता कहा गया है।

आर्ष वाङ्मय यज्ञ के महिमागान से भरा हुआ है। यजुर्वेद में स्पष्ट घोषणा है कि सुख-शांति चाहने वाला कोई व्यक्ति यज्ञ का परित्याग नहीं करता। जो यज्ञ को त्यागता है, उसे यज्ञरूपी परमात्मा भी त्याग देते हैं। सबकी उन्नति के लिए आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं, जो नहीं छोड़ता, वह राक्षस हो जाता है।

रामायण काल के पुत्रेष्टि यज्ञ, सर्पयज्ञ, अश्वमेध यज्ञ चर्चित प्रकरण हैं। महाभारत काल में राजसूय यज्ञ की विशिष्ट चर्चा होती है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि असुर और सुर, सभी पुण्य के मूल हेतु यज्ञ के लिए प्रयत्न करते हैं। यज्ञ जीवन के सांसारिक उत्कर्ष के साथ परम पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाला साधन है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रेष्ठ, पुण्य, निष्काम एवं पारमार्थिक कर्म को यज्ञ कर्म की संज्ञा दी गई है। यज्ञ कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्मों में लगा हुआ मनुष्य कर्मों में बँधता है। इसलिए श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि वह उस परमेश्वर के निमित्त कर्म का भली प्रकार आचरण करे।

एक अन्य स्थान पर भगवान कृष्ण कहते हैं कि यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब प्रकार के पापों से छूटते हैं और जो लोग मात्र अपने शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

इस तरह श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ का परम कल्याणकारी दर्शन मनुष्य मात्र के अभिन्न सहचर के रूप में प्रतिपादित किया गया है और इहलोक एवं परलोक को सिद्ध करने का साधन माना गया है।

यज्ञ शब्द 'यजन' धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ हैं—(1) देवपूजन, (2) संगतिकरण और (3) दान। देवपूजन का अर्थ है—परिष्कृत व्यक्तित्व, दैवी सद्‌गुणों का अनुगमन। संगतिकरण अर्थात एकता, सहकारिता, संघबद्धता। दान अर्थात समाजपरायणता, विश्व-कौटुंबिकता एवं उदार-सहृदयता।

इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व यज्ञ करता है, जिसके फलस्वरूप याजक के अंतःकरण में प्रेम, एकता, सहयोग, सद्‌भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्‌भावों का स्वयमेव आविर्भाव होने लगता है।

अग्नि यज्ञ का केंद्रीय तत्त्व है, जो अजस्र प्रेरणाओं से भरा हुआ है। ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित कहा गया है। उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक, दोनों सुधारे जा सकते हैं।

इसमें निहित शिक्षाएँ हैं—

(1) जो कुछ बहुमूल्य पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं, उन्हें वह अपने पास संग्रह नहीं रखती, वरन सर्वसाधारण के उपयोग के लिए वायुमंडल में बिखेर देती है।

(2) जो वस्तु अग्नि के संपर्क में आती है, उसे वह दुत्कारती नहीं, वरन अपने में आत्मसात् करके अपने समान ही बना लेती है।

(3) अग्नि की लौ कितना ही दबाव पड़ने पर भी नीचे की ओर नहीं जाती, वरन ऊपर को ही रहती है।

(4) अग्नि जब तक प्रज्वलित रहती है, उष्णता एवं प्रकाश की अपनी विशेषताओं को नहीं छोड़ती है।

(5) यज्ञाग्नि के अवशेष—भस्म को मस्तक पर लगाते हुए हमें सीख मिलती है कि मानव जीवन का अंत मुट्‌ठीभर भस्म के रूप में शेष रह जाता है।

(6) अग्नि थोड़ी-सी वस्तु को वायुरूप बनाकर उसे समस्त जड़-चेतन प्राणियों को बिना अपने-पराए, मित्र-शत्रु का भेद किए गुप्त दान के रूप में खिला देती है।

इस तरह से यज्ञ व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण की एक सशक्त विधा है, जिसके माध्यम से सुसंस्कारों की प्रतिष्ठापना होती है। वैदिक साधनापद्धति में यज्ञ को अनिवार्य रूप से जोड़ा गया है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में, योगी को याज्ञिक भी होना चाहिए, इसीलिए जप के दसवें हिस्से का हवन किया जाता है। यज्ञ को व्यक्तित्व को रूपांतरण के एक गहन मनो-आध्यात्मिक प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में—यज्ञादि कर्मकांड द्वारा देव आवाहन, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्‌भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी भट्‌ठी जैसी ऊर्जा पैदा की जाती है, जिसमें मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों तक को गलाकर सत्प्रवृत्तियों को विकसाया जाता है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में—यज्ञ की पहुँच अंतःकरण, अंतर्मन तक है। वह व्यक्ति की विचारणा, आकांक्षा, भावना, श्रद्धा, निष्ठा, प्रज्ञा को प्रभावित करता है तथा उनका परिशोधन और अभिवर्द्धन भी करता है। इस तरह यज्ञ व्यक्तित्व के रूपांतरण का एक गहरा मनो-आध्यात्मिक प्रयोग है, जिससे मनुष्य के प्रसुप्त देवत्व के जागरण का प्रयोजन सिद्ध होता है।

जिन परिवारों में नित्य यज्ञ होते हैं, निश्चित रूप से वहाँ संतानों के मन पर दिव्य प्रभाव पड़ते हैं और परिवार नररत्नों की खदान बनते हैं। प्राचीनकाल का इतिहास साक्षी है कि जिन दिनों इस देश में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी, उन दिनों यहाँ महापुरुषों की कमी नहीं थी।

आज यज्ञ का तिरस्कार करके अनेक दुर्गुणों, रोगों, कुसंस्कारों और बुरी आदतों से ग्रसित व्यक्तित्वों से ही हमारे घर भरे हुए हैं। इस तरह यज्ञ पीढ़ियों को संस्कारित करने का अभिनव प्रयोग था, जो पारिवारिक स्तर पर विभिन्न संस्कारों के माध्यम से संपन्न होता था।

चिकित्सापद्धति के रूप में यज्ञ एक समग्र चिकित्सा है, जिसका अपना विज्ञान-विधान है। युगऋषि ने यज्ञोपैथी के रूप में यज्ञ-चिकित्सा को 21वीं सदी की चिकित्सा तक कहा है। इसमें रोगों के अनुरूप वनौषधियों का चयन किया जाता है और चयनित मंत्रों के साथ अधिकारी आचार्यों द्वारा अग्निहोत्र—यज्ञ संपन्न किया जाता है।

इस संदर्भ में शोध-अनुसंधान के आधार पर नित नए वैज्ञानिक प्रयोग एवं साक्ष्य उपलब्ध हो रहे हैं, जो शारीरिक, मनोकायिक एवं मनोवैज्ञानिक रोगों में यज्ञ-चिकित्सा की अद्‌भुत प्रभावशीलता को सिद्ध करते हैं।

यज्ञ से आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत-तरंगें फैलती हैं, वे लोगों के मनों में द्वेष, पाप, अनीति, वासना, स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराइयों को हटाती हैं। इसके परिणामस्वरूप अनेक समस्याएँ हल होती हैं। अनेक उलझनें, गुत्थियाँ, पेचीदगियाँ, चिंताएँ, भय, आशंकाएँ तथा बुरी संभावनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं।

इससे वातावरण निर्मल होता है और देशव्यापी, विश्वव्यापी बुराइयाँ तथा उलझनें सुलझती हैं। इस तरह व्यष्टि से लेकर समष्टि तक के हित में यज्ञ अपनी महती भूमिका निभाता है। यज्ञ स्वयं में एक समग्र जीवन दर्शन है, जिसमें व्यक्तित्व के रूपांतरण का गहरा मनो-आध्यात्मिक विज्ञान निहित है।

व्यक्ति के लौकिक उत्कर्ष एवं आध्यात्मिक विकास का विधान इसमें विद्यमान है। यज्ञ के माध्यम से चिकित्सा का अपना सर्वांगीण विज्ञान-विधान रहा है। साथ ही इसमें परिवार, समाज, प्रकृति-पर्यावरण, सकल सृष्टि एवं समष्टि का कल्याण निहित है। ❑

मनुष्य बन गया और विधाता उसे धरती पर भेजने लगे तो भेजते हुए बोले—"पुत्र! तू मानव जीवन का उपयोग आत्मकल्याण के लिए ही करना, ताकि मृत्यु आने पर पछताना न पड़े।" मनुष्य ने कहा—"जी प्रभु! पर आप मृत्यु आने से पूर्व चेतावनी जरूर दे देना, ताकि मैं समय रहते सँभल सकूँ।" विधाता ने हामी भरी। पृथ्वी पर आते ही मनुष्य अपने पथ-से भटक गया और मात्र इंद्रियसुखों में रस लेने लगा। समय आया और वह वृद्धावस्था को प्राप्त कर परमधाम को गति कर गया। वहाँ पहुँचकर उसने विधाता से कहा—"आपने वचन दिया था कि आप मृत्यु आने पर चेतावनी देंगे, पर मुझे तो ऐसा कोई संदेश नहीं मिला।"

विधाता बोले—"तेरी आँखों से दिखना, कानों से सुनना कम पड़ने लगा, हाथ-पैर कम काम करने लगे, पर तब भी तू उन्हें भूलकर इंद्रियसुखों में रस लेता रहा तो इसमें किसका दोष है? यही तो मेरी चेतावनी थी।" सत्य है कि मनुष्य अपना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गँवा देता है।

सादगी

मनुष्य अक्सर बाहरी भौतिक चीजों में सुख खोजता रहता है, लेकिन ये केवल क्षणिक सुख देती हैं और असली संतोष से दूर कर देती हैं। प्राकृतिक साधनों का सही और सीमित उपयोग ही जीवन को सुखी और संतुलित बनाता है।

जब मनुष्य अपने जीवन में दिखावे और अधिकता की प्रवृत्ति छोड़ देता है, तभी उसे वास्तविक शांति और सुख मिलता है। जो चीजें जितनी सरल और प्राकृतिक होती हैं, वे उतनी ही अधिक उपयोगी और टिकाऊ रहती हैं।

जैसे बाँस की पतली परतें मजबूत होने के बावजूद हलकी और लचीली होती हैं, वैसे ही सादगी में शक्ति छिपी होती है। बाहरी दिखावे और अनावश्यक संग्रह से व्यक्ति के मन में बेचैनी और अस्थिरता पैदा होती है; जबकि सादगी मन को स्थिर और शांत बनाती है। सादगी से व्यक्ति के भीतर करुणा, प्रेम और संवेदनशीलता का विकास होता है।

जब हम प्रकृति से प्राप्त साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करते हैं, तब हमारा मन भी निर्मल और प्रसन्न रहता है। इसके विपरीत जब हम भोग-विलास में फँस जाते हैं, तब मन अशांत और असंतुष्ट रहने लगता है।

प्रकृति में हर चीज का संतुलन होता है। जब मनुष्य इस संतुलन को बिगाड़ता है, तब अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं। उदाहरण के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई से न केवल पर्यावरण बिगड़ता है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का अभाव भी हो जाता है।

इसलिए आवश्यक है कि हम प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करें और उनका संरक्षण करें। सार यह है कि सादगी और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान का भाव ही जीवन को सच्चा सुख और शांति प्रदान करता है। यह न केवल हमारे लिए, बल्कि समाज और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी कल्याणकारी होता है। ❑

मनुष्य महान है, अपने में समग्र है। यह मात्र इस कारण है कि वह ब्राह्मी सत्ता का ही एक अंश है। जिस प्रकार बुझती आग को प्रदीप्त करने के लिए राखरूपी मलिन आवरण हटाने पड़ते हैं, वैसे ही मनुष्य पर भी दैनंदिन जीवन में छाए कषाय-कल्मष को मिटाने की आवश्यकता पड़ती है। ये अकारण अमरबेल की तरह होते हैं, जो वृक्ष से पोषण लेती है और उसके ऊपर छाकर उसे शुष्क कर डालती है। यदि जीवसत्ता को परमपिता के सामीप्य का लाभ पाना हो तो उसे इस बंधन की दीवारों को तोड़ना ही होगा। मनुष्य दीन-हीन बनता है, अपने ही कारण, ईश्वर के समकक्ष बनने का श्रेय पाता है तो वह भी मात्र अपने ही बलबूते।

—परमपूज्य गुरुदेव

राष्ट्र गौरव सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार वल्लभभाई पटेल एक महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे और स्वतंत्रता आंदोलन को सफलता के मुकाम तक पहुँचाने वाली विशिष्ट राष्ट्रीय विभूतियों में से एक थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरदार पटेल ने देश की बिखरी हुई 560 से अधिक रियासतों को भारतीय संघ में मिलाने के असंभव से कार्य को संभव कर अखंड भारत के निर्माण में अपना अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया। इसी कारण उन्हें भारत का बिस्मार्क कहा जाता है।

सरदार वल्लभभाई पटेल स्वतंत्र भारत के पहले उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री थे। भारत के सबसे चुनौतीपूर्ण समय में अपने दृढ़ संकल्प और अटूट इच्छाशक्ति के साथ एकजुट भारत का निर्माण करने के कारण सरदार वल्लभभाई पटेल को 'भारत का लौह पुरुष' कहा जाता है।

बिखरी हुई रियासतों को एकजुट करने के लिए उन्होंने अपार दबाव का सामना किया और कूटनीति और दृढ़ता, दोनों का उपयोग करते हुए अखंड भारत का निर्माण किया।

सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात के नडियाड में एक किसान परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम झवेरभाई पटेल और माता का नाम लाडबाई था। बचपन से ही वे परिश्रमी, ईमानदार और दृढ़ इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति थे। उनकी लगन, अनुशासन और नेतृत्व क्षमता उनके विद्यार्थी जीवन में विकसित हुई थी।

एक बार उनको बड़ा-सा फोड़ा हो गया था। गाँव में आधुनिक चिकित्सा के अभाव में लोहे की गरम सलाखों से बिना किसी भय-हिचक के ही वे उपचार के लिए तैयार हो गए।

जब वे स्कूल की छोटी कक्षा में पढ़ते थे, उन्होंने एक लालची शिक्षक के विरुद्ध आंदोलन खड़ा कर दिया था, जो अपनी पुस्तकों की दुकान खोल सबको वहीं से पुस्तकें खरीदने के लिए दबाव बनाते थे। इस प्रकार सरदार पटेल आरंभ से ही अन्याय के विरोधी रहे और साहस के साथ विरोधियों का सामना करते रहे। इसी गुण के बल पर वे शक्तिशाली अँगरेज शासकों से भी डटकर लोहा ले सके।

अपने घर की आर्थिक अवस्था को देखकर वल्लभभाई ने कॉलेज की पढ़ाई का विचार स्थगित कर दिया और मुख्त्यारी की परीक्षा देकर अदालत में मुकदमों की पैरवी करने लगे। सन् 1909 में अपने भाई की पढ़ाई पूरी होने के बाद ही वल्लभभाई पटेल सन् 1910 में स्वयं के खरचे से इंग्लैंड गए और वहाँ से बैरिस्टर बनकर लौटे। इस तरह सरदार पटेल ने भ्रातृप्रेम एवं लोकोपकार का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। इन्हीं गुणों ने स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में उनको एक प्रमुख नेतृत्वकर्त्ता के रूप में खड़ा किया।

सरदार पटेल सन् 1917 में ही गांधी जी के सहयोगी बन चुके थे और जलियाँवाला बाग हत्याकांड (1919) के अवसर पर उन्होंने अहमदाबाद की हड़ताल और जुलूस का नेतृत्व करके स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना भी आरंभ कर दिया था।

इसलिए सन् 1920 में जब कांग्रेस ने कोलकाता (कलकत्ता) और नागपुर के अधिवेशनों में

असहयोग की घोषणा की तो सरदार पटेल ने तुरंत बैरिस्टरी पद से त्यागपत्र दे दिया।

साथ ही उन्होंने अपने बच्चों को सरकारी शिक्षा संस्थानों में पढ़ाना भी बंद कर दिया। उसी समय उन्होंने असहयोग करने वाले बहुसंख्यक विद्यार्थियों को राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने के लिए गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की और इसके लिए बर्मा तक का दौरा करके दस लाख रुपया इकट्ठा करके लाए।

इसके कुछ ही समय बाद नागपुर झंडा सत्याग्रह (1923) का अवसर आया। यह झंडा सत्याग्रह ऐसे अवसर पर आरंभ किया गया था, जब गांधी जी ने चौरी-चौरा हत्याकांड हो जाने के बाद, प्रायश्चितस्वरूप असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया था और इस कारण देश में एक अवसाद की-सी स्थिति पैदा हो गई थी।

फिर भी श्री पटेल ने आरंभ से ही नागपुर सत्याग्रह का समर्थन किया और बाद में स्वयं उसका संचालन करके उसे सफल बनाया। इससे समस्त देश में जोश की लहर फैल गई और अनुत्साह की भावना कुछ अंशों में दूर हो गई।

इसी प्रकार गुजरात के बोरसद तालुका में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में एक सफल कर-प्रतिरोध आंदोलन संपन्न हुआ। ब्रिटिश सरकार द्वारा डकैती विरोधी पुलिस के खरचे के नाम पर किसानों पर लगाए गए अनुचित हेडिया कर के विरोध में एक अहिंसक आंदोलन हुआ। पटेल के नेतृत्व में एकता के कारण सरकार को लगाया गया कर वापस लेना पड़ा।

जिस महान कार्य के फलस्वरूप श्री पटेल को 'सरदार' की उपाधि दी गई और जिसने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में अपने अमिट पदचिह्न छोड़ने का गौरव प्राप्त किया, वह था बारडोली का अहिंसक संग्राम।

बारडोली सत्याग्रह (1928) के दौरान अनुचित कर-वृद्धि के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किया गया।

इस आंदोलन के दौरान किसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए उनके अडिग नेतृत्व और संघर्ष क्षमता को देखकर वहाँ की जनता ने उन्हें सरदार की उपाधि दी।

गांधी जी से प्रेरित होकर सन् 1930 में सरदार पटेल ने नमक सत्याग्रह जैसे आंदोलनों का नेतृत्व किया और उन्हें अनेक बार कारावास का दंड दिया गया। यद्यपि जेल के कष्टों से उनका स्वास्थ्य खराब हो रहा था, पर बीमारी की दशा में भी उन्होंने बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण कार्यों को पूरा किया और स्वतंत्रता संग्राम में अपना उल्लेखनीय योगदान देते रहे।

सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सरदार वल्लभभाई पटेल इसके प्रमुख नेताओं में से एक थे, जिन्होंने गांधी जी के 'करो या मरो' के आवाह्न को जमीनी हकीकत बनाया। सरदार पटेल की संगठनात्मक क्षमता और दृढ़ संकल्प ने सन् 1942 के आंदोलन को एक जनविद्रोह में बदल दिया, जिसने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी।

स्वतंत्रता संग्राम में सरदार पटेल ने जितने महत्त्वपूर्ण कार्य किए, उनका महत्त्व देश के किसी अन्य नेता के कार्यों की तुलना में न्यून न था, पर स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के पश्चात अग्नि-परीक्षा के दौर में लोगों ने उनकी वास्तविक शक्ति और योग्यता को अनुभव किया।

आजादी के बाद उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के रूप में उनकी पहली प्राथमिकता देशी रियासतों को भारत में शामिल करना था। इस कार्य को उन्होंने बिना युद्ध या बड़े रक्तपात के बखूबी संपन्न किया।

जब सन् 1947 में भारत आजाद हुआ, तब देश 560 से अधिक रियासतों में बँटा हुआ था। इन रियासतों को भारत संघ में शामिल करना एक

असंभव-सा कार्य था, लेकिन सरदार पटेल ने अपने राजनीतिक कौशल, कूटनीति और दृढ़ संकल्प के बल पर जूनागढ़, हैदराबाद और अन्य चुनौतीपूर्ण रियासतों सहित लगभग 565 देशी रियासतों का भारत में विलय कराया।

इन रियासतों के भारतीय संघ में एकीकृत करने से लाखों लोगों के लिए स्थिरता और लोकतंत्र सुनिश्चित हुआ। इस भागीरथी पुरुषार्थ एवं अभूतपूर्व योगदान के लिए सरदार पटेल को भारत का लौहपुरुष कहा गया।

सरदार पटेल को भारतीय सेवाओं का जनक भी माना जाता है। उन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा और पुलिस सेवा के ढाँचे को सुदृढ़ किया, जिसके कारण उन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का संरक्षक भी कहा जाता है।

संविधान निर्माण के दौरान सरदार पटेल ने संविधान सभा में मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक तथा जनजातीय एवं अपवर्जित क्षेत्रों पर सलाहकार समिति की अध्यक्षता की थी।

सरदार पटेल राष्ट्रभक्त होने के साथ ही भारतीय संस्कृति के भी महान पृष्ठपोषक थे। भारत का बँटवारा हो जाने के पश्चात जब वे सौराष्ट्र का दौरा करने गए तो विदेशी आक्रांताओं द्वारा तोड़े गए सोमनाथ मंदिर की दुर्दशा को देखकर उनको हार्दिक कष्ट हुआ और उन्होंने उसके पुनर्निर्माण का संकल्प कर दिया।

सरदार की अपील पर थोड़े समय में ही देश के सभी भागों से एक बड़ी धनराशि इकट्ठी हो गई। कालांतर में सोमनाथ में मूर्ति-प्रतिष्ठा के महोत्सव में भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भाग लिया था।

सोमनाथ, सरदार पटेल के लिए मात्र एक मंदिर भर नहीं था, अपितु इसे उन्होंने राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना के पुनरुत्थान का प्रतीक बनाया।

15 दिसंबर, 1950 को सरदार पटेल का मुंबई में निधन हुआ, लेकिन उनकी विरासत देशवासियों के हृदय-पटल पर सदैव के लिए अंकित हो गई। उनकी स्मृति में 31 अक्टूबर पूरे भारत में राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में मनाया जाता है, जो सरदार पटेल के एकता, अखंडता और समावेशी मूल्यों का स्मरणोत्सव है।

सन् 1991 में मरणोपरांत, सरदार पटेल को उनके अभूतपूर्व योगदान के लिए भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान **'भारत रत्न'** दिया गया। 31 अक्टूबर, 2018 को सरदार वल्लभभाई पटेल के सम्मान में विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा **'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी'** का उद्घाटन गुजरात के केवाडिया में किया गया है, जिसकी ऊँचाई 182 मीटर (600 फीट) है।

आत्मैवेदं जगत्सर्वं ज्ञातं येन महात्मना।
यदृच्छया वर्त्तमानं तं निषेद्धु क्षमेत कः॥

—अष्टावक्र गी. 4/4

अर्थात जिस धीर पुरुष के द्वारा यह संसार आत्मरूप में जान लिया गया, उसे उसकी इच्छानुरूप व्यवहार करने से कौन रोक सकता है?

सरदार पटेल को अपने दृढ़ संकल्प एवं राष्ट्रीय एकता के लिए 'भारत के लौहपुरुष' के रूप में सदैव याद किया जाता रहेगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के पहले उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री के रूप में बिखरी हुई रियासतों को एक सूत्र में पिरोकर नए भारत की एकता और अखंडता की नींव रखने का उनका भागीरथी पुरुषार्थ सदैव भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा।

देश की अखंडता को सुनिश्चित करने वाली उनकी लौह इच्छाशक्ति, राष्ट्रीय एकता की अदम्य भावना एवं नेतृत्व-क्षमता देशवासियों को सदैव प्रेरित करती रहेगी। ❑

सफलता के स्वर्णिम सूत्र

जीवन में हर व्यक्ति सफल होना चाहता है और अपने-अपने ढंग से प्रयास भी करता है, लेकिन कुछ ही लोग सफलता के शिखर तक पहुँच पाते हैं। इनमें भी अधिकांश सफलता की बुलंदियों पर भी स्वयं से संतुष्ट नहीं दिखते, जीवन के सच्चे सुख-शांति व आनंद से वंचित अनुभव करते हैं।

ऐसे में महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि सफलता के सही मायनों की समझ, इसके समग्र स्वरूप की पहचान, इसको प्राप्त करने के राजमार्ग से परिचय, जिससे कि इस सुरदुर्लभ मानव जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए बाह्य उपलब्धियों के साथ आंतरिक शांति, सुकून एवं पूर्णता की अनुभूति के साथ जीवन को जिया जा सके।

जीवन में सफलता का अर्थ

सफलता एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसके हर व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। सामान्यतया किसी विशिष्ट क्षेत्र में अमुक उपलब्धि को प्राप्त करना सफलता माना जाता है। कुछ लोग अपेक्षित धन-संपदा, सामाजिक पद-प्रतिष्ठा व मान-सम्मान को सफलता का पर्याय मान बैठते हैं।

एक विद्यार्थी के लिए अपने विषय का ज्ञान व अच्छे अंक की प्राप्ति सफलता हो सकती है। इस तरह सामान्य रूप में व्यक्ति द्वारा निर्धारित क्षेत्र में लक्ष्य की प्राप्ति को सफलता के रूप में परिभाषित किया जाता है, लेकिन कुछ व्यक्तियों के लिए बाहरी उपलब्धि से अधिक आंतरिक शांति, संतुष्टि एवं संतुलन की प्राप्ति अधिक महत्त्वपूर्ण रहती है, अतः उनके लिए सफलता के मायने बदल जाते हैं।

एकाकी सफलता का अभिशाप

जीवन को समग्र रूप में समझे व जिए बिना एकतरफा उपलब्धि से जुड़ी सफलता एकांगी ही मानी जाएगी। बाहरी सफलता के साथ आंतरिक शांति, संतुलन एवं स्थिरता के साथ समग्र सफलता का प्रारूप तैयार होता है, जिसमें व्यक्ति के साथ परिवार, समाज एवं समूची मानवता का उत्कर्ष जुड़ा होता है।

ऐसी समग्र सफलता जीवन में परिपूर्णता का एहसास दिलाती है; जबकि बाहरी सफलता के बावजूद आंतरिक रूप में तनाव, अवसाद, उद्विग्नता एवं हताशा-निराशा भरी स्थिति को सफल जीवन नहीं माना जा सकता।

समग्र सफलता के आयाम

(1) अपने कार्य-क्षेत्र की उपलब्धि,

(2) बाह्य उपलब्धि के साथ आंतरिक शांति, संतुष्टि एवं आनंद का भाव,

(3) शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास,

(4) जीवन के महत्तर उद्देश्य के साथ जुड़कर एक समाजोपयोगी जीवन, जिससे परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व मानवता का हित सधता हो।

इस तरह सच्ची सफलता का अर्थ इसकी समग्रता में है, जो जीवन के हर पक्ष को साथ लेकर चलता है, जिसमें व्यक्ति के व्यावसायिक या बाह्य जीवन की उपलब्धियों के साथ आंतरिक जीवन में भी सार्थकता का बोध घनीभूत रहता है और जीवन

एक परिपूर्णता के भाव से आप्लावित रहता है। समग्र सफलता का अर्थ एक चिरस्थायी उपलब्धि के साथ है, जो बाह्य एवं आंतरिक संतुलन, विकास एवं उत्कर्ष को साथ लेकर चलती है और व्यक्ति के समग्र विकास को सुनिश्चित करती है।

समग्र सफलता के स्वर्णिम सूत्र

(1) जीवन की समग्र समझ—मनुष्य-जीवन सृष्टि का श्रेष्ठतम उपहार है, ईश्वरप्रदत्त एक बहुमूल्य अवसर है। जिसमें निहित क्षमताओं को उभारते हुए, मानव जीवन की संभावनाओं को साकार करना है। इसके शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्षों की समझ के आधार पर आगे बढ़ना है।

(2) आत्मश्रद्धा—यह विश्वास कि हम कुछ भी कर सकते हैं। शरीर, मन-मस्तिष्क, विचार शक्ति, समय और इच्छाशक्ति जैसी ईश्वरप्रदत्त विशेषताओं के सुनियोजन के आधार पर यह संभव है। इस आधार पर मनुष्य अपना भाग्यविधाता आप है।

(3) स्पष्ट लक्ष्य—जिसे हम चरणबद्ध रूप में साकार कर सकें। इसमें कैरियर गोल के साथ जीवनलक्ष्य का उचित निर्धारण अपेक्षित है। व्यावसायिक लक्ष्य के साथ हमारा आर्थिक पक्ष सधता है और जीवनलक्ष्य के अंतर्गत स्वयं के उत्कर्ष के साथ समाज का व्यापक हित पूर्ण होता है।

(4) लक्ष्य का अंत:प्रेरित होना—लक्ष्य ऐसा हो, जो हमारी रुचि, पैशन, क्षमता एवं मौलिकता से जुड़ा हो अर्थात अंत:प्रेरित हो; जिससे हम जीवन को संपूर्ण रूप में जी सकें। समस्या का नहीं, बल्कि समाधान का हिस्सा बनते हुए एक अर्थपूर्ण जीवन जी सकें।

(5) व्यक्तित्व का समग्र विकास—सभी पक्षों के विकास का सचेष्ट प्रयास, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, बौद्धिक प्रखरता, भावनात्मक परिपक्वता, नैतिक सबलता और आध्यात्मिक चेतनता के साथ एक समग्र जीवन जी सकें।

(6) समय का श्रेष्ठतम उपयोग—मिले चौबीस घंटों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए, समय का उचित प्रबंधन करते हुए निर्धारित लक्ष्य को दैनंदिन आधार पर प्राप्त कर सकें और निरंतर जीवन के अभीष्ट ध्येय की ओर गतिशील रहें।

(7) सकारात्मक चिंतन—जीवन के अनुरूप छोटी-छोटी उपलब्धियों को साकार करते हुए जीवन की संभावनाओं को साकार करते हुए आशा, उत्साह एवं उमंग से भरा जीवन जिएँ, स्वयं आगे बढें और दूसरों को भी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते रहें।

(8) सहयोग-सहकार भरा जीवन—अपने विकास के साथ जरूरतमंदों की सेवा को भी जीवन का अंग बनाएँ। व्यवहार में विनम्रता-शालीनता का अभ्यास करें। प्रतिकूल तत्त्वों एवं प्रवाह से निपटने के लिए धैर्य, सहिष्णुता एवं शौर्य-साहस जैसे सद्गुणों का अभ्यास करें तथा पीड़ा पतन के निवारण में अपना यथासंभव योगदान दें।

(9) नित्य आत्मपरिष्कार, आत्मविकास—ईमानदार स्व-मूल्यांकन के आधार पर प्रतिदिन अपनी कमियों, दुर्बलताओं एवं न्यूनताओं का परिमार्जन तथा सुधार करते चलें और श्रेष्ठ सद्गुणों को धारण करते हुए व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं जीवन के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर रहें।

निश्चित रूप में इसके लिए लक्ष्य की स्पष्टता महत्त्वपूर्ण रहती है। लगातार सीखने का भाव होना अभीष्ट है। असफलताओं से सीखने की तत्परता और हार के बावजूद डटे रहने की जिजीविषा अनिवार्य है। अनुशासित जीवन के साथ कृतज्ञता एवं सकारात्मकता का भाव महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में महापुरुषों के सत्संग एवं स्वाध्याय की

महिमा अपरंपार है और जीवन में श्रेष्ठ आदर्श का होना एक निर्णायक तत्त्व रहता है।

सफलता में असफलता का महत्त्व

किसी भी क्षेत्र में सफलता एकाएक नहीं मिलती। यह दीर्घकालीन पुरुषार्थ एवं संघर्ष का परिणाम रहती है, जिसमें असफलता का अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

कई लोग असफलता का सामना होने पर हिम्मत हारकर प्रयास छोड़ देते हैं; जबकि हर असफलता कुछ संदेश लिए होती है, व्यक्ति को कुछ समझाने के लिए आती है। जो इसे समझ पाते हैं, उनके लिए असफलता, सफलता का एक महत्त्वपूर्ण सोपान बन जाती है और हर असफलता जीवन को एक नया अर्थ देकर जाती है।

अतः असफलता को इसके सही अर्थों में स्वीकार करने की क्षमता एक बहुत महत्त्वपूर्ण गुण है, जो भावी सफलता को सुनिश्चित करती है। किसी विचारक ने सही कहा है कि बिना उत्साह खोए, एक असफलता से दूसरी असफलता तक जाने की क्षमता सफलता है, जो अंततः व्यक्ति को निर्धारित सफलता एवं उत्कर्ष की मंजिल तक पहुँचाती है।

इस तरह असफलताओं की शृंखला के मध्य बिना हारे, बिना हताश-निराश हुए आगे बढ़ते रहना ही सफलता की सुनिश्चितता है। हर असफलता कुछ सिखाने आती है। आवश्यकता हर असफलता का ईमानदार मूल्यांकन करते हुए अपनी कमजोरियों को चिह्नित करने की है, अपने प्रयास में रह गई कमी को समझने की है, इसको अपनी शक्ति में बदलने की है और नए सिरे से, नए उत्साह के साथ आगे बढ़ने की है तथा इस प्रक्रिया को तब तक दोहराने की है, जब तक कि सफलता की तय मंजिल उपलब्ध न हो जाए। □

ऋषि धौम्य ने शिष्य आरुणि को आश्रम की चहारदीवारी को देखने भेजा। रातभर मूसलाधार बारिश हुई थी। ऋषि को शंका थी कि कहीं कुछ टूटा तो नहीं है। आरुणि ने देखा कि एक जगह दीवार में छेद हो गया था। पानी तेजी से भीतर आ रहा था। उसे लगा कि यदि सहायता लेने गया तो तब तक देर न हो जाए। समय हाथ से निकल जाए, इस चिंता में उसने अपना शरीर ही टूटी दीवार के छिद्र में लगा दिया।

रात ऐसे ही गुजर गई। वह रातभर न लौटा तो ऋषि अन्य शिष्यों को लेकर उसे ढूँढ़ने निकले। वह दीवार के किनारे बेहोश पड़ा मिला। उसकी स्थिति देख ऋषि धौम्य की आँखों से अश्रुओं की धार बह निकली।

उन्होंने आरुणि का त्वरित उपचार कराया और उसके स्वास्थ्य लाभ करने पर उसे जीवन-विद्या का पारंगत विद्वान बनने का सौभाग्य प्रदान किया।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

संसार के सभी दार्शनिकों ने 'सुख' को मानव जीवन का परम लक्ष्य, सर्वोच्च पुरुषार्थ और अंतिम साधना माना है। वेदों का उद्घोष है कि **'अनुद्विग्नं सुखं शाश्वतम्'** अर्थात स्थायी और शुद्ध आनंद ही जीवन का सच्चा स्वरूप है। प्राचीन दार्शनिक हेराक्लिट्स ने भी सुख को जीवन का मूल तत्त्व स्वीकार किया, परंतु जब हम वास्तविकता का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि और प्रयत्न का लक्ष्य सुख-प्राप्ति ही होता है।

फिर भी आश्चर्य यह है कि सुख की चाह में भागते-भागते वह प्राय: दु:ख की खाई में गिर पड़ता है। डॉक्टर नीरनिंग, लाजर, लाक और युंग जैसे आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि यदि मनुष्य के प्रयासों का सही मूल्यांकन किया जाए तो उनमें से अधिकांश सुख-प्राप्ति की आकांक्षा से प्रेरित होते हैं, परंतु परिणाम प्राय: इसके विपरीत ही निकलता है।

संपूर्ण जगत् का यह सत्य है कि 'सुख' की भाषा में जीवन का अनुवाद नहीं किया जा सकता। मानव जीवन की विडंबना यह है कि सुख की परिभाषा को लेकर ही सबसे बड़ी भूलें होती हैं। किसी वस्तु, परिस्थिति अथवा व्यक्ति में स्थायी सुख खोजने पर अंतत: निराशा ही हाथ लगती है। यही कारण है कि मनुष्य का मन हमेशा असंतोष, अशांति और उद्विग्नता में डोलता रहता है।

मनोविज्ञान बताता है कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रोगों का एक प्रमुख कारण सुख का गलत दृष्टिकोण है। वास्तव में सुख का आधार बाह्य पदार्थों, परिस्थितियों अथवा इंद्रियों के क्षणिक आनंद पर नहीं, बल्कि अंत:करण की निर्मलता और जीवन-दृष्टि की पवित्रता पर है।

यदि व्यक्ति का हृदय नैतिकता, सद्भावना और सहिष्णुता से पूर्ण हो तो उसके जीवन में शांति, संतोष और प्रसन्नता का अविरल प्रवाह बना रहता है। सुख की खोज में भटकते मनुष्य को यह समझना होगा कि वह बाहर नहीं, भीतर है।

आचार्य शंकर ने भी कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।

अर्थात मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण बनता है। जब तक मनुष्य इंद्रियों के पीछे भागता रहेगा, सुख मरीचिका की भाँति छूते ही विलीन हो जाएगा, किंतु जब उसका मन आत्मा के प्रकाश से आलोकित हो जाएगा, तब उसे वास्तविक सुख-शांति और संतोष का अनुभव होगा। यही वह स्थिति है, जिसे धर्मग्रंथों में 'आनंद' कहा है, जो स्थायी है, शाश्वत है और जीवन को सार्थक बनाता है।

मनुष्य का जीवन सुख और शांति की तलाश में निरंतर गतिशील है, किंतु इस खोज में उसकी सबसे बड़ी भूल यह है कि वह बाह्य परिस्थितियों, भौतिक सुविधाओं और इंद्रिय आनंद में ही सुख ढूँढ़ता है। परिणामस्वरूप उसे क्षणिक सुख तो मिल जाता है, लेकिन स्थायी तृप्ति कभी प्राप्त नहीं होती। आधुनिक मनोविज्ञान भी मानता है कि तनाव, उद्विग्नता, ईर्ष्या, रोष और भय जैसी नकारात्मक भावनाएँ मानव जीवन को गहराई से प्रभावित करती हैं।

यही भावनाएँ शारीरिक और मानसिक रोगों की जननी बनती हैं। जब मन अशांत होता है तो शरीर पर भी इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह और अनेक रोगों का प्रमुख कारण यही मानसिक असंतुलन है। 'सुख का रहस्य' यह नहीं कि हमें परिस्थितियाँ कैसी मिलती हैं, बल्कि यह है कि हम उनका सामना किस दृष्टिकोण से करते हैं।

एक ही घटना किसी को हताश कर सकती है तो किसी को प्रेरणा भी दे सकती है। यह दृष्टिकोण ही है, जो मनुष्य के जीवन को दु:खमय अथवा सुखमय बनाता है। दार्शनिकों और संतों ने स्पष्ट कहा है कि वास्तविक सुख आत्मा की शांति और अंत:करण की पवित्रता में ही निहित है।

जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को संयमित कर, कर्त्तव्यपालन और नैतिकता के मार्ग पर चलता है तभी उसे स्थायी आनंद की अनुभूति होती है। विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि जिन व्यक्तियों का जीवन संतुलित और संयमित होता है, वे अधिक स्वस्थ, दीर्घायु और संतुष्ट रहते हैं।

वहीं भोगवादी दृष्टिकोण से जीने वाले लोग, चाहे बाह्य रूप से कितने ही संपन्न क्यों न दिखाई दें, भीतर से अशांत और असंतुष्ट रहते हैं। मानव जीवन का परम ध्येय केवल सुख-साधन जुटाना नहीं, बल्कि उस आनंद सागर में प्रवेश करना है, जो भीतर से उमड़ता है।

यह आनंद भोग से नहीं, त्याग से; संग्रह से नहीं, समर्पण से और स्वार्थ से नहीं; सेवा से मिलता है। स्वामी विवेकानंद ने कहा था—'बाहरी संपदा से मनुष्य बड़ा नहीं होता, वरन आत्मिक संपदा से उसकी महत्ता बढ़ती है।' इसी आत्मिक संपदा का नाम है—सच्चा सुख। यही सुख मानव जीवन को अर्थपूर्ण बनाता है और यही हर पीड़ा का वास्तविक उपचार है। ❑

सूर्यवंश में विशाल नामक राजा हुआ। आत्मपरिष्कार की कामना से उसने वर्षों तक हिमालय-क्षेत्र में रहकर भगवान को पाने के लिए तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान प्रकट हुए और बोले—"तथास्तु! क्या वर माँगता है?" राजा विशाल ने उत्तर दिया—"प्रभु! आपके दर्शन हो गए, अब और क्या माँगूँ? बस, इतनी कामना है कि यदि कुछ आशीर्वाद देना ही चाहें तो यह दें कि हिमालय के इस क्षेत्र में आपका निवास हो जाए। कलियुग में मनुष्यों की अल्पायु होती है। लाखों वर्षों तक तपस्या कर पाना उनके लिए संभव नहीं है, सो यह वरदान दें कि जो इस क्षेत्र में आकर तपस्या करे, उसे आपके दर्शन का शीघ्र लाभ मिले।" भगवान बोले—"पुत्र! तेरा नाम ही विशाल नहीं, तेरा हृदय भी विशाल है। आज से ये बदरी क्षेत्र तेरे नाम से जाना जाएगा और लोग इसे बदरी-विशाल कहकर पुकारेंगे। जो भी यहाँ आकर निर्मल मनोभाव से मुझे पुकारेगा, उसके लिए मैं शीघ्र प्रकट होऊँगा।" राजा विशाल के कारण बदरीनाथ-क्षेत्र की इतनी महिमा है। संत-तपस्वी स्वयं के लिए नहीं, समाज के कल्याण के लिए कामना करते हैं।

आमूलचूल परिवर्तन का समय

हर भावनाशील व्यक्ति का चहुँओर समाज में व्याप्त अवांछनीय परिस्थितियों को देखकर संवेदित-आंदोलित होना स्वाभाविक है। साथ ही ऐसे में हर आदर्शवादी व्यक्ति के अंत:करण में युग की इस दशा को बदलने व सुधारने का भाव झंकृत होना भी स्वाभाविक है।

कुछ में भावुकतावश तो कुछ में अज्ञानतावश इसका शुभारंभ प्राय: बाहर सुधार के प्रयासों के साथ होता है, लेकिन धीरे-धीरे समझ आता है कि परिवर्तन एवं सुधार की यह दिशा सही नहीं।

स्वयं में सुधार किए बिना, जीवन में सत्य एवं धर्म की न्यूनतम प्रतिष्ठापना किए बिना बाहर परिवर्तन व सुधार के प्रयास अधूरे प्रतीत होते हैं। दूसरों को जबरन बदलने के प्रयास कीचड़ को निर्मल जल से धोने के बजाय कीचड़ की होली खेलने जैसे साबित होते हैं। ऐसे में न तो बाहर उपेक्षित सुधार होते हैं और न ही अंतर में आत्मसंतोष का भाव जगता है, बल्कि परिणति में समाधान के बजाय समस्या और उलझ जाती है।

ऐसे में पूज्य गुरुदेव का प्राज्ञ संदेश सुधार की सही दिशा का प्रखर बोध कराता है, जिसे वे अपने जीवन के उदाहरण के साथ स्पष्ट करते हैं कि परिवर्तन की शुरुआत स्वयं से करनी होगी। हम बदलेंगे, तो युग बदलेगा, हम सुधरेंगे तो युग सुधरेगा तथा अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है और स्पष्ट करते हुए वे नारा देते हैं कि अपना-अपना करो सुधार, तभी मिटेगा भ्रष्टाचार। बात सरल एवं रोमांचक प्रतीत होते हुए भी कार्य कठिन एवं चुनौतीपूर्ण रहता है।

पूज्यवर की जीवनकथा के अनुरूप जीवन की, चेतना की शिखर यात्रा प्रारंभ हो जाती है। जन्म-जन्मांतर के अभ्यास, आदतें, संस्कार इसमें चट्टान बनकर खड़े हो जाते हैं, लेकिन जो आत्मपरिष्कार की ठान बैठे हों, उनके लिए फिर कुछ भी असंभव नहीं रह जाता। उनका संकल्प और गुरुकृपा का संयोग-सहयोग कार्य को सरल बना देता है।

इस समय हम युग-परिवर्तन के ऐतिहासिक पलों से गुजर रहे हैं। शताब्दी वर्ष 2026 के रूप में आमूलचूल परिवर्तन का उद्घोष हो चुका है। व्यक्तिगत स्तर पर यह जीवन के शीर्षासन का समय है।

यह तन, मन और प्राण के साथ निम्न प्रकृति के रूपांतरण का समय है। अपने संकीर्ण स्वार्थ, क्षुद्र अहं को विराट में विसर्जित कर बिंदु से सिंधु बनने का समय है।

यह नर-से नारायण, जीव-से शिव बनने की यात्रा का निर्णायक प्रस्थान बिंदु है। शून्य होकर, सब कुछ खोकर सब कुछ पाने का विलक्षण समय है। यह अपनी श्रद्धा को निष्ठा की कसौटी पर कसने का समय है। गुरु-कार्य के संग श्रद्धा, समर्पण और भक्ति की शक्ति को अनुभव करने का समय है।

अजस्र रूपों में बरस रही उनकी दैवी कृपा को धारण कर जीवन को धन्य बनाने का समय है। भाव-संवेदना के जागरण के साथ बाहर अपेक्षित समाधान का हिस्सा बनने का समय है। समर्थ गुरु की नाव में बैठकर भवसागर को पार करने का समय है। ❑

जीवन-निर्माण की पाठशाला है परिवार

परिवार को जीवन-निर्माण की प्राथमिक पाठशाला कहा गया है; क्योंकि बालक की प्रारंभिक शिक्षा और दीक्षा यहीं से प्रारंभ होती है। माता-पिता के रूप में पहले गुरु उसे यहीं मिलते हैं। यही वह पहला स्थान है, जहाँ बच्चे व्यवहार, संस्कार, नैतिकता, जीवनमूल्य और आधारभूत जीवन कौशल सीखते हैं। ये सब मिलकर उसके चरित्र और भविष्य की नींव रखते हैं, जिससे व्यक्ति समाज का एक जिम्मेदार एवं उपयोगी नागरिक बनता है।

परिवार, आश्रम-व्यवस्था का आधारस्तंभ

भारतीय परंपरा में परिवार का विशेष स्थान रहा है। आश्रम-व्यवस्था में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आते हैं। जिसमें गृहस्थ आश्रम परिवार-व्यवस्था से जुड़ा हुआ है, इसे शास्त्रों में सभी आश्रमों का आधार माना गया है। इसीलिए गृहस्थ धर्म अन्य सभी धर्मों से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है।

नररत्नों की खदान के रूप में गृहस्थ ही ब्रह्मचर्य आश्रम का सुदृढ़ आधार है। गृहस्थ से परिपक्व व्यक्ति ही वानप्रस्थ में प्रवेश कर पाते हैं और संन्यास आश्रम भी गृहस्थों द्वारा ही पोषित रहता है। इस तरह परिवार के बिना हम समाज-व्यवस्था की कल्पना भी नहीं कर सकते।

शास्त्रों में वर्णित धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ चतुष्टय भी परिवार-व्यवस्था में ही सधते हैं। धर्मयुक्त अर्थ का उपार्जन और काम का सेवन परिवार में ही संभव होता है, जो स्वत: ही व्यक्ति के जीवन की सर्वोच्च अवस्था मोक्ष की ओर ले जाते हैं अर्थात परिवार में ही जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक उद्देश्यों की पूर्ति संभव होती है। इस कारण भारतभूमि में परिवार-व्यवस्था को सदैव से ही महत्त्वपूर्ण माना गया है।

परिवार के महत्त्व को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है—

परिवार-व्यवस्था का महत्त्व

(1) पहली पाठशाला—शिशुओं के लिए अभिभावकों से जीवन का पहला पाठ परिवाररूपी पाठशाला में मिलता है। कैसे उठना-बैठना है, खाना-पीना है, शिष्टाचार, लोक-व्यवहार एवं जीवन कौशल इन सबका प्राथमिक शिक्षण इसी पाठशाला में बच्चों को मिलता है, जो आगे चलकर विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में जाकर परिवर्तित-परिष्कृत होता है।

(2) संस्कारों का केंद्र—परिवार ही संस्कारों का प्राथमिक केंद्र रहता है। भारतीय परंपरा में षोड्श संस्कार के अंतर्गत पुंसवन, नामकरण, चूड़ाकर्म, विद्यारंभ जैसे संस्कार पारिवारिक स्तर पर ही संपन्न होते हैं। जीवन के महत्त्वपूर्ण पड़ावों पर जीवन जीने के आधारभूत शिक्षण इन महत्त्वपूर्ण संस्कारों के माध्यम से मिलते हैं।

(3) नैतिक मूल्यों की शिक्षा—परिवार व समाज में कैसा आचरण-व्यवहार रखना है, क्या सही है व क्या गलत है, ऐसे नैतिक मूल्यों की शिक्षा बच्चों को परिवाररूपी पाठशाला में ही मिलती है। जहाँ परिवार बड़े होते हैं, वहाँ बड़ों को सम्मान दिया जाना, छोटों से स्नेहपूर्ण व्यवहार रखना, आपस

में तालमेल बिठाते हुए रहना, इस सबका शिक्षण परिवार में ही मिलता है।

(4) चरित्र-निर्माण—माता-पिता एवं बड़ों के आचरण-व्यवहार व प्रशिक्षण बच्चों में श्रेष्ठ विचारों का आरोपण करते हैं, अच्छी आदतों का विकास करते हुए, उनके उन्नत चरित्र की आधारशिला रखते हैं। संयम, सदाचार, श्रमशीलता, सादा जीवन- उच्च विचार, ईमानदारी, जिम्मेदारी, शालीनता, सहकार, आदर्शवादिता जैसे सद्गुणों का अभ्यास परिवार में करते हुए बच्चे सहज रूप से श्रेष्ठ चरित्र के धनी बनते हैं।

(5) सुरक्षा और अपनापन—परिवार में बड़े बुजुर्गों की गोद में मिलने वाला अपनापन, स्नेह-संरक्षण बच्चों में सहज रूप में सुरक्षा एवं अपनेपन का गाढ़ा एहसास कराता है, और उनका गहनतम स्तर पर भावनात्मक पोषण होता है, जो ताउम्र उनके लिए संबल बनकर जीवन की चुनौतियों का प्रभावी रूप से सामना करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(6) सांस्कृतिक विरासत का हस्तांतरण—निस्संदेह रूप से परिवार में एक से दूसरी पीढ़ी में सहज क्रम में पारिवारिक मूल्यों एवं श्रेष्ठ संस्कारों का हस्तांतरण होता है। भारतीय संस्कृति आज तक जिन कालजयी तत्त्वों के लिए विश्वविख्यात रही है, वे परिवार संस्था द्वारा ही संरक्षित रहे हैं व आज भी उनकी अंतर्धारा प्रवाहित है।

(7) जीवन-साधना की प्रयोगशाला—अधिकांश ऋषि-मुनि, महात्मा, योगी-यती सद्गृहस्थ हुए हैं। इस युग में पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी का ऋषिकल्प जीवन इसका जीवंत उदाहरण है। उन्होंने परिवार को गृहस्थ तपोवन की संज्ञा दी, जिसमें संयम, सेवा और सहिष्णुता का अभ्यास किया जाता है, इनके साथ व्यक्ति आत्मकल्याण एवं लोक-मंगल के पुनीत उद्देश्य को सहज रूप से प्राप्त होता है।

प्राचीनकाल में इन्हीं विशेषताओं के कारण परिवार-व्यवस्था नररत्नों की खदान के रूप में काम करती रही। अपने धर्म, संस्कृति एवं राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ भाव लिए संतानें ही आगे चलकर इसकी धर्मध्वजा-वाहक बनकर जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समाज, राष्ट्र एवं विश्व का नेतृत्व करती थीं।

इन्हीं के आधार पर भारत कभी सोने की चिड़िया के रूप में प्रख्यात रहा और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विश्वगुरु के रूप में विश्व का मार्गदर्शन करता रहा।

परिवार-व्यवस्था का वर्तमान संकट

आधुनिक युग में विदेशी गुलामी के लंबे अंतराल के बीच परिवार-व्यवस्था क्षीण हुई। विज्ञान, तकनीकी से प्रभावित आधुनिक जीवनशैली व अपसंस्कृति ने इसकी जड़ों पर कुठाराघात किया। संयुक्त परिवार धीरे-धीरे टूटते गए, एकल परिवारों की संख्या बढ़ती गई। विवाह संस्था भी प्रभावित होने से परिवार छिन्न-भिन्न होते चले। ऐसे में मूल्यों व संस्कारों की स्रोत, संस्कृति की संरक्षिका तथा नररत्नों की खदान परिवार-व्यवस्था संकट की अवस्था में है, जिसे पुनर्जीवित एवं संरक्षित करने की आवश्यकता है।

परिवार-निर्माण का सचेष्ट प्रयास हो

टूटती-बिखरती परिवार-व्यवस्था को बचाने के लिए पारिवारिक स्तर पर प्रयास किए जाने अपेक्षित हैं। इसके लिए आवश्यक हो जाता है नित्य आपसी संवाद के लिए कुछ समय निकालें। प्रतिदिन एकदूसरे से बात करें व बच्चों के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताएँ।

यथासंभव एक साथ बैठकर भोजन करें। एकदूसरे के कार्यों में सहयोग करें। एकदूसरे की भावनाओं को समझें व न्यूनतम आशा-अपेक्षा रखते हुए अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों का पालन करें। सामूहिक हित में अपने सुख का त्याग करना सीखें। इस तरह परिवार में सकारात्मक वातावरण तैयार होगा। पारिवारिक सामंजस्य हेतु इन पंचशीलों का अभ्यास करें।

परस्पर आदरभाव रखें व एकदूसरे की भिन्नता एवं मौलिकता को समझते हुए एकदूसरे का सम्मान करें। गलती होने पर अपनी भूल स्वीकार करें व दूसरे को क्षमा करें। एकदूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें। आपसी व्यवहार में भेदभाव न रखें और विवादों का निष्पक्ष निपटारा करें।

परिवार में आस्तिकता का वातावरण तैयार करें

परिवार में आस्तिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता के प्रोत्साहन के साथ ईश्वर में विश्वास सुदृढ़ होता है। कर्मफल मिलने की आस्था प्रगाढ़ होती है। ऐसे में कुमार्ग से बचने, सत्पथ पर चलने का संस्कार सुदृढ़ होता है और सद्गुणों का विकास होता है। इसके लिए सामूहिक पूजा-पाठ-आरती, ध्यान-साधना आदि की व्यवस्था घर में की जा सकती है। साथ ही परिवार में स्वाध्याय की वृत्ति का पोषण करें, जो परिवार-निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध रहती है।

घर में ही एक छोटा-सा पुस्तकालय बनाएँ। श्रेष्ठ पुस्तकों के पठन-पाठन, श्रवण व चर्चा के साथ सत्संग की व्यवस्था बनाएँ। बड़े-बुजुर्ग बच्चों को नैतिक व प्रेरक कथा-कहानियाँ सुनाकर खेल-खेल में चरित्र-निर्माण, आदर्शवादिता एवं कर्त्तव्यपरायणता के पाठ सिखा सकते हैं।

बच्चों के शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास के साथ सद्गुणों का विकास सबसे महत्त्वपूर्ण रहता है। अच्छी आदतों, सत्प्रवृत्तियों, सद्भावनाओं के विकास के बल पर ही वे सही मायने में सफलता के साथ सुखी व संतुष्ट रहेंगे। और इन सबका प्रशिक्षण उपदेश से अधिक माता-पिता अपने आचरण-व्यवहार से सिखाने का प्रयास करें, जिसका प्रभाव स्थायी रहता है। इस तरह परिवार-निर्माण के साथ न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व का निखार होता है, बल्कि समाज के उत्थान में भी मूल्यवान योगदान होता है।

बाल-निर्माण की इस पाठशाला को संरक्षित करने, परिवर्तित करने में माता-पिता एवं अभिभावकों का कर्त्तव्य बनता है कि वे इसके महत्त्व को समझें। साथ ही संतानों का भी कर्त्तव्य बनता है कि वे इसके महत्त्व को देखते हुए अपनी समझ के अनुरूप इसमें अपना यथासंभव योगदान दें। ❑

तपस्या करते हुए एक साधक को वर्षों बीत गए। देवदर्शन से वह तब भी वंचित रहा। निराश होकर उसने अपने गुरु के चरणों में निवेदन किया—"गुरुवर! इतने वर्ष तपस्या करते हुए हो गए। अभी तक किसी भी देवता के दर्शन न हो सके।"

गुरु बोले—"पुत्र! किसी और देवता की अभ्यर्थना करने के स्थान पर जीवन देवता की आराधना करो। जीवन प्रत्यक्ष देवता है। उसकी अभ्यर्थना करने से हाथोंहाथ सप्तपरिणामों की प्राप्ति होती है। जीवन-साधना से ही ईश्वर-साधना सधती है।"

साधक को तपस्या का मंत्र मिल गया। वह जीवन देवता की आराधना में निरत हो गया।

विराट दृष्टि

संकीर्ण दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति गाँव की सीमा से आगे नहीं देख पाता; जबकि व्यापक दृष्टि वाले के लिए पूरा संसार खुला होता है।

संकीर्ण सोच केवल तात्कालिक लाभ या सीमित परिस्थितियों को देखती है; जबकि विराट दृष्टि भूत, वर्तमान और भविष्य—सभी को एक साथ देख पाती है। विराट दृष्टि से देखने वाला व्यक्ति घटनाओं के गहरे अर्थ, उनके अदृश्य कारण और दूरगामी परिणाम को समझ सकता है।

यही कारण है कि ऋषियों ने 'विवेक दृष्टि' को सर्वश्रेष्ठ कहा है। दृष्टि केवल देखने का नाम नहीं है, यह सृजन की प्रेरणा भी है। जैसा दृष्टिकोण होगा, वैसा ही जीवन का निर्माण होगा। संकीर्ण दृष्टि सीमित संसार रचती है, जबकि व्यापक दृष्टि अनंत संभावनाओं के द्वार खोल देती है।

प्रख्यात दार्शनिक ब्लैक ने अपनी पुस्तक 'क्रिएटिव विजन' में लिखा है—'दृष्टि की बनावट और दिशा, सृजन की दिशा तय करती है। सृजन केवल साधनों से नहीं, बल्कि विचारों और दृष्टिकोण से जन्म लेता है।'

सृजन करने वाला व्यक्ति पहले अपनी दृष्टि को निर्मल, निष्कलंक और महान बनाता है, ताकि उससे उत्पन्न कार्य भी महान हो। वेदों में ईश्वर की दृष्टि को त्रिविध कहा गया है—

(1) सर्वव्यापक दृष्टि—जो हर जगह व्याप्त है।

(2) सर्वदर्शी दृष्टि—जो सब कुछ देखती है।

(3) सर्वज्ञान दृष्टि—जो सब कुछ जानती है।

ईश्वर की यही अनंत दृष्टि, अनंत ज्ञान और अनंत शक्ति का स्रोत है। जब मनुष्य अपनी दृष्टि को निर्मल करता है तो उसकी सोच और कार्य दोनों में दिव्यता आती है। ऐसी दृष्टि न केवल जीवन को सही दिशा देती है, बल्कि आत्मिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों में सफलता का मार्ग खोलती है। परमात्मा का सान्निध्य हमें तीन वरदान देता है—

(1) जीवन की संपूर्णता और आत्मबल।

ईश्वरः सर्वनिर्माता नेहान्य इति निश्चयी।
अंतर्गलितसर्वाशः शान्तः क्वापि न सज्जते॥

—अष्टावक्र गीता, 11/2

अर्थात सबको पैदा करने वाला ईश्वर है, दूसरा कोई नहीं है। ऐसा जो निश्चयपूर्वक जानता है, वह पुरुष शांत है। उसकी सब आशाएँ जड़ से नष्ट हो जाती हैं और वह कहीं भी आसक्त नहीं होता।

(2) मन और हृदय की निर्मलता एवं स्थिरता।

(3) भक्ति, ज्ञान और कर्म का संतुलन।

जिस प्रकार वन में रहने वाला साधक प्रकृति के सान्निध्य में आध्यात्मिक बल प्राप्त करता है, वैसे ही दृष्टि की निर्मलता हमें जीवन के गहरे रहस्यों का अनुभव कराती है। ऐसे अनुभव से जीवन न केवल पूर्ण होता है, बल्कि उसमें अनंत शक्ति और आनंद का प्रवाह भी होता है। ❑

भारतीय संस्कृति—विश्व संस्कृति

भारतीय संस्कृति को विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति कहा गया है। दुनिया के प्राचीनतम ग्रंथ वेद में इस संस्कृति को प्रथम कहा गया है। **'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'**—अर्थात यह विश्व की प्रथम संस्कृति है। इसे ही देव संस्कृति भी कहा जाता है। इसका निर्माण ऋषियों द्वारा किया गया है।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक संपूर्ण विश्व में अनेकों संस्कृतियाँ उत्पन्न हुईं, उनका विकास भी हुआ और धीरे-धीरे वे नष्ट भी होती चली गईं। मिस्र, बेबोलोन, रोम, यूनान जैसी अनेक प्राचीन सभ्यताओं के अब अवशेष ही मौजूद दिखाई पड़ते हैं। भारतीय संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है, जो सर्वाधिक प्राचीन होते हुए भी निरंतर जीवंत और गतिशील बनी हुई है।

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों की तुलना में भारतीय संस्कृति अति प्राचीन होते हुए भी अभी तक जीवंत है, क्योंकि इसकी मूल प्रकृति पूर्णत: आध्यात्मिक है तथा मानवता के परम कल्याण के श्रेष्ठतम आदर्शों, मूल्यों और परंपराओं को इसने स्वयं में सँभाले रखा है।

इतिहास की लंबी यात्रा में बाह्य आघातों, आक्रमणों और संघर्षों के बीच भी भारतीय संस्कृति के स्वरूप का यथावत् बने रहना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। यह संस्कृति न केवल अपने अस्तित्व को सँभाले रही है, अपितु निरंतर विश्वमानवता को भटकने से बचाते हुए कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करती आ रही है।

धर्म, अध्यात्म एवं दिव्य परंपराओं से सुशोभित यह भारतीय संस्कृति अपने स्वरूप में समूचे विश्व समाज को समाहित किए हुए है।

विश्वमानवता व प्राणिमात्र के लिए **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना तथा **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** की एकता-समता का महान आदर्श इस दिव्य संस्कृति की विशेषता एवं पहचान रहे हैं। इसका विश्वव्यापी संदेश है—**'आत्मानं विद्धि:'** अर्थात आत्मा को जानो।

अनेकता में एकता और सर्वस्व में अद्वैत अर्थात एक ही तत्त्व को देखने की जीवन-दृष्टि भारतीय संस्कृति को विश्व में सर्वोच्च व सम्माननीय बनाती है। अत्यंत उदारवादी, समन्वयकारी व सहिष्णुतापूर्ण आदर्शों तथा जीवन-मूल्यों से ओत-प्रोत प्रवृत्तियाँ एकमात्र भारतीय संस्कृति में दिखाई देती हैं, इसलिए यह संस्कृति महान रही है।

यहाँ हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख आदि विविध धर्म-संप्रदाय विकसित होकर एक साथ विद्यमान हैं। विदेशी सभ्यता-संस्कृतियों से आए लोगों के प्रति भी इस संस्कृति में सदैव सम्मान व आत्मीयता की भावना रही है। विश्व का प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता है। बिना किसी भेदभाव व वैमनस्य के यह महान संस्कृति संपूर्ण विश्व-वसुधा को अपना ही अंग एवं परिवार मानती है।

इतिहास साक्षी है कि भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही भाषा, जाति, प्रांत, धर्म-संप्रदायों की विविधता के यहाँ रहने पर भी यहाँ सभी एक साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते आ रहे हैं। यहाँ सभी को

अपने-अपने धर्म, विश्वास व परंपराओं को जीने व जीवंत बनाए रखने की स्वतंत्रता प्राप्त रही है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण जब-जब विदेशी जातियाँ; जैसे—यवन, शक, हूण, कुषाण से लेकर मुगल और अँगरेज तक, जो भी जातियाँ यहाँ आईं तो उन्हें कुछ अंशों में राजनीतिक जीत भले ही मिल गई हो, परंतु सांस्कृतिक रूप से कभी भी किसी ने भारत पर विजय प्राप्त करने में सफलता नहीं पाई है।

भारतीय संस्कृति की धार्मिकता और आस्थापूर्ण परंपराओं पर भी कम आघात नहीं हुए हैं, परंतु इसी उदात्त धर्म-भावना के समक्ष सभी बाह्य कुत्सित प्रयास धराशायी होते आए हैं। सच्चाई तो यह है कि सभी धर्मों को समुचित स्थान, सम्मान व संरक्षण देने वाली यह विश्व की इकलौती संस्कृति सिद्ध हुई।

यहूदी, पारसी, इस्लाम, ईसाई आदि विभिन्न धर्मों के लोग समय-समय पर यहाँ आए तथा भारतीय संस्कृति की उदारता एवं व्यापकता से अभिभूत हो यहीं के होकर रह गए। विश्वबंधुत्व की भावना से पोषित इस संस्कृति में मानवता का धर्म सर्वोपरि रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का मूल धर्म-मानव धर्म ही है।

मानव मात्र के कल्याण और उत्थान की प्रार्थना एवं उपासना इस संस्कृति की पूजापद्धतियों, कर्मकांडों, प्रतीकों और प्रचलित परंपराओं में सर्वत्र व्याप्त दिखाई पड़ती है। बिना किसी भेदभाव के धरती के समस्त प्राणियों की कल्याण की कामना तथा समान भाव से सभी को संरक्षण प्रदान करने वाली भारतीय संस्कृति ही सही अर्थों में विश्व संस्कृति है।

मनुष्य जीवन के सर्वोत्तम विकास और समग्र जीवन की अवधारणा भारतीय संस्कृति को विश्व समाज में उच्च स्थान प्रदान करती है। यही एकमात्र ऐसी संस्कृति है, जिसमें विश्वमानवता के उत्थान व कल्याण के लिए एक उत्कृष्ट एवं महान जीवन दर्शन प्रस्तुत है।

विश्व की किसी भी संस्कृति को महान बनाने वाले दो मुख्य पहलू होते हैं—पहला जीवन-दृष्टि और दूसरा है—जीवनपद्धति। भारतीय संस्कृति की जीवन-दृष्टि पूर्णतः आध्यात्मिक है। अध्यात्मवादी जीवन-दृष्टि होने के कारण ही यह संस्कृति सभी में एकता, समता और अपनत्व को देखती है। ऐसी व्यापक जीवन-दृष्टि के आधार पर विनिर्मित जीवनपद्धति भी पूर्णतः अध्यात्मवादी आदर्शों से संचालित है।

यहाँ भौतिकता और वैज्ञानिकता के साथ-साथ त्याग, सेवा, धर्म, योग, संस्कार आदि के उच्चस्तरीय जीवनमूल्य भी जीवन-व्यवहार के अंग हैं। भारतीय संस्कृति में सदैव एकता, समानता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता से युक्त जीवन आदर्शों तथा श्रेष्ठ परंपराओं के अंतर्गत ही मनुष्य का जीवन संचालित होता आया है।

सत्यवादिता, न्यायप्रियता, उदारता, त्याग, सेवा, समर्पण, सहयोग आदि सद्गुणों का कर्त्तव्य के रूप में पालन करना भारतीय समाज की धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवनचर्या का अंग है। इस संस्कृति में व्यक्ति एवं समाज को दिशा एवं प्रेरणा प्राप्त करने के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ा है। भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के संपूर्ण विकास का मार्गदर्शन करने वाले शास्त्र एवं ग्रंथ विरासत रूप में यहाँ सदैव प्रस्तुत रहे हैं।

वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, गीता, रामायण आदि सद्ग्रंथों से भारत सहित संपूर्ण विश्व समाज प्रकाश एवं प्रेरणाएँ प्राप्त करता आया है। विश्व संस्कृति के रूप में भारतीय संस्कृति की महानता

इसकी विशेषताओं में प्रकट होती आई है। एकता, समता, पवित्रता और बंधुत्व के साथ-साथ प्राणिमात्र के कल्याण एवं उत्थान की भावना इस संस्कृति को अग्रणी व पूज्य बनाते हैं।

इसकी आध्यात्मिक परंपराएँ इसको दिव्यता प्रदान करती हैं और धर्मधारणा इस संस्कृति को सार्वभौमिक एवं समन्वयकारी स्वरूप प्रदान करती है।

कर्मफल सिद्धांत में विश्वास, नारी शक्ति रूप में उपासना, जड़-चेतन में एक ही आत्मा का दर्शन करना, समस्त संसार को परिवार की भाँति समझना तथा सेवा एवं परोपकार को धर्म व कर्त्तव्य मानकर सदैव इनके निर्वाह में तत्पर दिखाई देना—ये कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएँ हैं, जो भारतीय संस्कृति को विश्व की एक महान संस्कृति होने का गौरव प्रदान करती हैं। ❑

आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अतः संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.), 281 003
फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

सबका हित ही अपना हित

मनुष्य जीवन को पोषित, संरक्षित और विकसित करने में समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। सामाजिकता की प्रवृत्ति भी मानवीय स्वभाव में प्रकृतिजन्य मौजूद है। ऐसे में व्यक्ति और समाज के बीच अंतर्निहित मर्म को प्रकट करता यह सत्संकल्प का पाँचवाँ सोपान अत्यंत प्रेरक है।

विगत चार सूत्रों के समस्त भाव, क्रिया-व्यवहार मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को अंतः-बाह्य दृष्टि से परिष्कृत व उन्नत बनाने की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं, परंतु यह पाँचवाँ सूत्र मनुष्य की व्यक्तिगत जीवन की परिधि से बाहर जीवन व्यवहार के आदर्शों व प्रेरणाओं को प्रकट करता है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में सत्संकल्प का यह पाँचवाँ सूत्र है—**'अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।'** पूज्य गुरुदेव इस सूत्र के माध्यम से मानवीय जीवन में नैतिकता, व्यावहारिकता, परोपकारिता और लोकसेवा के महान गुणों को व्यक्तित्व में धारण करने का महामंत्र देते हैं।

व्यक्ति स्वयं के जीवन की परिधि में जिस प्रकार अपनत्व, आत्मीयता, सुरक्षा, संरक्षण, पोषण, सौंदर्य, पवित्रता, स्वच्छता जैसे मूल्यों को प्रधानता देता है, ठीक इसी प्रकार इन मूल्यों का विस्तार उसके जीवन से समाज में भी परिलक्षित होने लगे, यही भाव इस सत्संकल्प के प्रथम चरण में है। व्यक्ति और समाज की एकता, एकात्मकता और समता-शुचिता की आधारशिला यही भावना है।

व्यक्ति समाज के लिए भी उतना ही कर्त्तव्यशील, उत्तरदायी और समर्पित हो उठे, जितना कि वह स्वयं के प्रति है। ऐसा होने से समाज की अनेकों विषमताओं, समस्याओं का समाधान यों ही निकल आता है। युग निर्माण की संकल्पना में यह भावना, जिसमें व्यक्ति और समाज की अभिन्नता प्रतिष्ठित हो, एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। विचार क्रांति की यात्रा इसी पड़ाव से होकर गुजरती है। वर्तमान का परिदृश्य व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों की टूटी-उलझी डोर को प्रत्यक्ष दरसाता है।

व्यक्ति के जीवन में समाज और उसकी आदर्श-परंपराओं व मूल्यों का स्थान अपनी सुविधा, अहंतुष्टि और स्वार्थपरता के अनुसार बनता-बिगड़ता रहता है। सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से व्यक्ति का आचरण एवं व्यवहार दोहरे मानदंड लेकर प्रकट होते देखा जा सकता है। जब मन करे तब वह समाज की परंपराओं-मूल्यों का हिमायती बन बैठता है और जब चाहे सामाजिक आदर्शों, मान्यताओं को तिलांजलि देकर स्वतंत्र एवं स्वच्छंद व्यवहार करने लगता है।

ऐसे दोहरे आचरण की बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण ही समाज में आपसी प्रेम, सद्भावना, सहयोग, सेवा, त्याग, परोपकार, दया, विश्वास जैसे सामाजिक जीवन के आदर्श मूल्य दिखाई नहीं पड़ते और इन मूल्यों को पोषित एवं संरक्षित करने वाली रीतियाँ-परंपराएँ, जो समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थीं, वह भी आधुनिकता और दिखावे की चादर में दम तोड़ती नजर आ रही हैं। जब व्यक्ति अपने समाज, जिसमें वह पैदा हुआ, पोषित-संरक्षित-विकसित हुआ है, उसी समाज की परंपरा और मूल्यों के प्रति ईमानदार व उत्तरदायी नहीं रहेगा तो फिर वह भावी पीढ़ी में सामाजिक

मूल्यों-आदर्शों को हस्तांतरित करने में असमर्थ ही रहेगा।

ऐसी अवस्था में समाज और उसके भीतर पली-बढ़ी संस्कृति के स्वरूप में जो विकृतियाँ अथवा संकट उत्पन्न होंगे, उनकी कल्पना करना ही दु:खद है। इस बात का सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि मूल्यविहीन तथा आदर्शों व दिव्य परंपराओं से विहीन समाज में जन्म लेना भावी पीढ़ी के लिए किसी अभिशाप से कम साबित नहीं होगा।

ऋषियों ने जिन आदर्शों-मूल्यों को आधार बनाकर मनुष्य जीवन को मनुष्यता और देवत्व की दिशा में अग्रसर होने का मार्ग बताया है, वह खो जाएगा और जीवन स्वत: ही सत्प्रवृत्तियों से विमुख हो पाशविक एवं आसुरी प्रवृत्तियों का शिकार बन बैठेगा।

वर्तमान की वस्तुस्थिति भी भटकाव की ही दिखाई देती है। व्यक्ति के जीवन में सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों को जीने की क्षमता एवं रुचि घटने लगी है। अत: समय रहते व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों को सुदृढ़ नहीं किया गया तो मानवता और मानवीय संस्कृति को जीवंत बनाए रखना असंभव ही होगा। परमपूज्य गुरुदेव ने इस समस्या का समाधान व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व में खोज निकाला है।

सत्संकल्प का यह पाँचवाँ सूत्र उसी समाधान को लेकर प्रस्तुत हुआ है। व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं आचरण ही किसी समाज एवं संस्कृति का प्राण, जीवन एवं पहचान हैं। यदि व्यक्तित्व में ही समाज के प्रति सद्भावनाएँ, सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण कर दिया जाए तो बाहरी परिदृश्य की समस्याओं का समाधान स्वत: हो जाता है। यह तभी संभव है, जब व्यक्ति अपनी सोच एवं भावनात्मक संकीर्णता से ऊपर उठकर समाज को भी अपने जीवन का अनिवार्य अंग मानने लगे।

वह स्वार्थ और अहंकार का अतिक्रमण कर अपनी संवेदना को विस्तार दे, ताकि संपूर्ण समाज का जीवन उसे अपना ही जीवन अनुभव होने लगे। सत्संकल्प का यह सूत्र पूज्य गुरुदेव की इसी आकांक्षा को अभिव्यक्त करता है, जिसमें वे व्यक्ति और समाज की एकात्मकता, समानता, पारिवारिकता की धुरी पर नैतिकता और मानवता के मूल्यों को सर्वत्र फैलाना चाहते हैं।

उन्होंने इस सूत्र के माध्यम से समस्त संसार को एक नई दृष्टि और मानवीय आचरण का सुगम मार्ग दिखाया है। व्यक्ति केंद्रित या समाज केंद्रित अथवा दोनों के समन्वय को दरसाने वाली विचारधाराएँ तो अनेकों मिल जाती हैं, परंतु दोनों के एकत्व एवं अपनत्व को दरसाने वाला यह चिंतन सर्वथा नवीन है। पूज्य गुरुदेव की दृष्टि में व्यक्ति से भिन्न समाज का कोई स्वरूप नहीं है। समाज तो व्यक्ति के व्यक्तित्व और जीवन आयामों का स्वरूप होता है।

जिस प्रकार समुद्र बूँद-बूँद से मिलकर ही बनता है, वैसे ही समाज भी व्यक्तियों से आकार पाता है। व्यक्ति का जीवन एवं आचार-विचार सही व शुद्ध हो तो समाज व समाजों से बना राष्ट्र तथा उसकी संस्कृति भी दूषित नहीं रह सकते हैं। समस्या का मूल कारण तो व्यक्ति का समाज के प्रति भाव तथा समाज में किए जाने वाले आचरण-व्यवहार की निम्नता है।

सत्संकल्प की ये प्रेरणाएँ व्यक्ति के जीवन में इन्हीं दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं को विकसित बनाने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। मनुष्य होने के नाते सामाजिकता हमारी मूल प्रवृत्ति होने के साथ-साथ एक आध्यात्मिक जीवन मूल्य भी है। इसी से मानवता और मानवीय संस्कृति के बहुआयामों का पोषण एवं विकास संभव होता है। यह मानव हृदय की संवेदना, सहकार, सद्भाव और सेवा जैसे गुणों से पुष्ट होती है।

समता, एकता, आत्मीयता और अपनत्व जैसे गुणों को धारण किए बगैर समाज के बीच रहते हुए भी मनुष्य जीवन गिनती की एक संख्या मात्र बनकर निरर्थक ही व्यतीत होता है।

भीतर की संवेदना, अपनापन और दूसरों के सहयोग, परोपकार की भावना से ही बाह्य जीवन में शांति, सद्भाव, सहयोग, सेवा जैसे मानवीय मूल्यों का प्रसार एवं प्रकाश दिखाई पड़ता है। ऐसे मूल्यों और सद्गुणों से युक्त जीवन ही समाज की सुदृढ़ता का आधार बनकर आचरण एवं सदाचार के आदर्श स्थापित कर भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करता है।

सत्संकल्प का यह पाँचवाँ सूत्र सद्गुण, सदाचार और परोपकार की भावना को प्रत्येक के व्यक्तित्व में प्रतिष्ठित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्ति के भाग्य और समाज के भविष्य को उज्ज्वल और कल्याणकारी मार्ग पर चलाने के लिए पूज्य गुरुदेव का यह सूत्र सम्यक दृष्टि प्रदान करता है।

भौतिक दृष्टि से व्यक्ति एवं समाज का जीवन शिक्षा, धन-संपदा, साधन-संसाधन आदि की समुन्नति से कितना ही उन्नत दिखाई पड़े, परंतु सुख, शांति और खुशहाली तभी संभव है, जब लोगों का व्यक्तित्व सद्गुणी और सदाचारी हो। भारतीय जीवनपद्धति के निर्माता—ऋषियों ने इस मर्म का बखूबी ध्यान रखते हुए ही प्रत्येक मनुष्य के लिए आचरण एवं कर्त्तव्य संबंधी नीति-नियमों का निर्माण किया था।

उनकी अध्यात्मवादी दृष्टि में मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य और विकास की यात्रा में समाज भी उसकी प्रगति का एक अनिवार्य अंग है। जीवन में दैवी और मानवीय भावनाओं का उच्चतम विकास सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वाह में सहज संभव हो जाता है। समाज में ही रहकर व्यक्ति अपने कर्म, धर्म और जीवन-व्यवस्था आदि का निर्वाह करता है तो ऐसे में समाज का स्थान व्यक्ति के जीवन से बाहर कैसे हो सकता है?

समाज के प्रति व्यक्ति के जो कुछ भी उत्तरदायित्व-कर्त्तव्य कहे गए हैं, वे सब स्वधर्म ही हैं। स्वधर्मरूपी कर्त्तव्यों के बोध होने पर ही व्यक्ति का जीवन अनुशासित, संयमित और परहित में स्वयं के कल्याण की अनुभूति को प्राप्त करता है। समाज में ऐसे व्यक्ति का जीवन दान, सेवा, सहकार, सहयोग आदि उत्थान के कर्त्तव्यों से परिपूर्ण होता है।

स्वधर्म की इस दिव्य संरचना को आधार बनाकर ही हमारी संस्कृति, समाज और जीवन के स्वरूप के सर्वांगपूर्ण विकास का मार्ग विनिर्मित किया गया है। स्वधर्म के सूत्र-सिद्धांत आचरण में प्रकट होकर ही सार्थक बनते हैं। आचरण एवं चरित्र की श्रेष्ठता ही इनका मानदंड रहा है। चारित्रिक आदर्श की ओर गतिशील जीवन में समाज, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति सेवा, समर्पण एवं त्याग की भावना स्वतः जीवन का अंग बन जाती है।

सत्संकल्प का यह सूत्र मनुष्य जीवन को चारित्रिक दृष्टि से विकसित बनाने वाली दिव्य भावनाओं को भीतर प्रतिष्ठित कर कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहने की प्रेरणा देता है। व्यक्ति समाज के प्रति संवेदनशील एवं कर्त्तव्यपरायण बने तथा दूसरों के कष्ट, परेशानियाँ, पीड़ा से संवेदित हो परोपकार के मार्ग का अनुसरण करे—यही इसकी मूल भावना है।

परमपूज्य गुरुदेव का दिव्य संदेश है कि 'स्वार्थ ही संसार की समस्त समस्याओं का मूल है और परमार्थ ही समस्त समस्याओं के समाधान का एकमात्र उपाय है।' पूज्यवर के इस संदेश को व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने के लिए सत्संकल्प का यह पाँचवाँ सूत्र सरलतम मार्ग प्रस्तुत करता है। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—207

खान-पान के मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर शोध

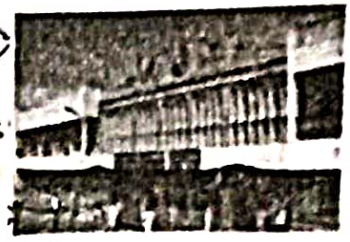

आधुनिक जीवनशैली ने मनुष्य जीवन को बाहरी रूप से उन्नत स्वरूप तो प्रदान किया है परंतु उसके आंतरिक जीवन में अनेकानेक जटिलताएँ और समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं। आधुनिकता की दौड़ में व्यक्ति के खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन दिखाई देता है।

जीवनशैली के पारंपरिक और सांस्कृतिक तरीकों को छोड़कर व्यक्ति और समाज तीव्रता से आधुनिकता और भोगवादी जीवनपद्धति की ओर उन्मुख हो रहे हैं। उसकी प्रगतिशीलता की दिशा—दिखावे, फैशन, वैभव के साजोसामान, साधन-संसाधन के अंबारों की ओर भटक भी गई है और विकृत भी हो गई है।

स्वयं के जीवन के प्रति दृष्टिकोण और धारणाएँ भी व्यक्ति ने बाहरी समाज के तौर-तरीकों और चलन के अनुसार बना ली हैं। परिणाम यह है कि व्यक्ति के जीवन जीने का निर्धारण भी बाह्य स्थिति-परिस्थितियों से होने लगा है। व्यक्ति की इस अंधानुकरण की प्रवृत्ति ने, उसकी जीवनशैली में अप्रत्याशित परिवर्तन उत्पन्न कर जीवन में अनेकों समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं।

खान-पान की आदतों और आहार के प्रति दृष्टिकोण में भी भारी परिवर्तन उत्पन्न हो गया है। बाहरी दुनिया के दिखावे और फैशन से प्रभावित हो लोग अपने रंग, रूप, कद, वजन, शरीर की बनावट आदि को लेकर बाहरी दुनिया के मानकों को आधार बनाकर आकलन करते हैं और इन्हीं बाह्य मानकों को सामने रखकर अपनी जीवनशैली में परिवर्तन करने को आतुर हैं।

विशेष कर युवावर्ग दुबला-पतला, सुडौल, आकर्षक दिखने वाले पश्चिमी आदर्श तथा फैशन की दुनिया के दिखावे से प्रभावित हो खान-पान की हानिकारक व आत्मघाती आदतों का शिकार हो रहा है। शारीरिक और मानसिक स्तर पर अनेक तरह की समस्याओं का संकट केवल खान-पान की आदतों एवं उसके प्रति दृष्टिकोण के बदलाव के कारण उत्पन्न हुआ है।

बिना सोचे-समझे खान-पान को बदल लेना या बाहरी दिखावे के अनुरूप मानकों को आधार बनाकर जीवनशैली में बदलाव लाने की प्रवृत्ति जिस तीव्रता से बढ़ी है, उसी अनुपात में इस विकृत सोच एवं आदतों ने मिलकर व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी दुष्प्रभाव उत्पन्न किया है।

इन दुष्प्रभावों का आकलन एवं परीक्षण करने की दिशा में भी प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि समय रहते खाने संबंधी विकारों की रोक-थाम की जा सके। विशेषज्ञों ने इसे खाने के विकार अर्थात 'ईटिंग डिसऑर्डर' के रूप में चिह्नित किया है। इस विकार की पहचान खान-पान संबंधी पहलुओं जैसे—भोजन का चयन, वजन संबंधी चिंताएँ, खाने संबंधित रुचि या अरुचि आदि से लेकर अति न्यून एवं अत्यधिक भोजन की आदतें सम्मिलित हैं।

खान-पान की आदतों में परिवर्तन और जीवनशैली से उत्पन्न समस्याओं के प्रति निदानात्मक

दृष्टिकोण से अध्ययन को महत्त्व देते हुए आधुनिक समय के शरीरक्रिया-विज्ञानियों, चिकित्सकों, पोषण विशेषज्ञों, समाजशास्त्रियों, मनोचिकित्सकों आदि ने अपने-अपने क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए हैं।

इन्होंने व्यक्ति की सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक और पारस्परिक विशेषताओं को भी अपने अध्ययनों में सम्मिलित कर यह पता लगाने का प्रयास किया है कि कौन-कौन से कारण हैं, जो खान-पान की आदतों में परिवर्तन उत्पन्न कर रहे हैं। किन कारणों से व्यक्ति डाइटिंग करता है? कौन-से व्यक्ति खान-पान की आदतों में बदलाव करते हैं और क्यों करते हैं? इन्हीं सब तथ्यों की पड़ताल कर ईटिंग डिसऑर्डर के लक्षणों का निर्धारण किया है।

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में व्यक्ति का अपने शरीर के प्रति असंतोष एवं हीनता अथवा बाहरी दुनिया में आदर्श रूप में स्थापित शारीरिक स्थिति के मानक के अनुरूप स्वयं शारीरिक बनावट को प्राप्त करने का प्रयास ईटिंग डिसऑर्डर जैसे खाने के विकारों को उत्पन्न करने में जिम्मेदार है। एनोरेक्सिया, बुलिमिया और बिंज ईटिंग आदि नामों से ईटिंग डिसऑर्डर की पहचान कर इसके उपचार एवं रोक-थाम का मार्ग अपनाया जा सकता है।

इस संदर्भ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक उल्लेखनीय शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन वर्ष-2022 में शोधार्थी कीर्ति द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ. संतोष कुमार विश्वकर्मा के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

युवा वयस्कों में खाने के प्रति बदलते दृष्टिकोण और उससे उत्पन्न जोखिम तथा समाधान के उपायों पर केंद्रित इस अध्ययन का विषय है—**इफेक्ट ऑफ साइको—'यौगिक इन्टरवेन्शन ऑन ईटिंग एटीट्यूड इन यंग एडल्ट एट दि रिस्क ऑफ ईटिंग डिसऑर्डर।'**

प्रायोगिक एवं विवेचनात्मक रीति से संपन्न किए गए इस शोध अध्ययन को कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी द्वारा इस अध्ययन के प्रयोगात्मक पक्ष हेतु लखनऊ (उत्तर प्रदेश) एवं देहरादून (उत्तराखंड) के शहरी शिक्षण संस्थानों से 19 से 26 वर्ष के आयुवर्ग के 300 युवाओं का उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया।

इस सर्वेक्षण में युवाओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि, खान-पान आदि की आदतें एवं विचार तथा शरीर के प्रति भावना को दरसाने वाले तथ्यों को आधार बनाया गया तथा सामान्य या कम वजन वाले प्रतिभागियों को ही अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

इस सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों को आधार बनाकर कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा 100 प्रतिभागियों को चयनित किया गया, जिनमें 50 पुरुषवर्ग एवं 50 महिलावर्ग रखा गया। दोनों वर्गों की संख्या समान रखते हुए इन 100 युवाओं में से 50 को प्रयोगात्मक समूह में तथा शेष को नियंत्रित समूह में वर्गीकृत किया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व प्रतिभागियों का शोध-उपकरण बीएमआई तथा ईएटी-26 प्रश्नावली द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

परीक्षण के उपरांत प्रयोग हेतु चयनित प्रतिभागियों पर मनोयौगिक उपचार की प्रक्रियाओं

को प्रशासित किया गया। उपचार के अंतर्गत जो प्रक्रियाएँ सम्मिलित की गई, वे हैं—

(1) परामर्श (सामूहिक परामर्श—प्रतिदिन 10 प्रतिभागियों को 15 मिनट तथा व्यक्तिगत परामर्श—प्रत्येक को सप्ताह में दो बार, 15 मिनट),

(2) सूर्य नमस्कार—10 प्रतिभागियों के समूह में दस चक्र, 15 मिनट प्रतिदिन,

(3) प्राणाकर्षण प्राणायाम 5 चक्र, 15 मिनट प्रतिदिन तथा

(4) माइंडफुलनेस मेडिटेशन—15 मिनट प्रतिदिन।

इन प्रक्रियाओं को तीन माह के शोध-प्रयोग अवधि तक प्रशासित करने के पश्चात पुनः शोध-उपकरण की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। प्रयोग पूर्ण होने पर शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण एवं प्रायोगिक अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया तथा परिणाम में यह पाया गया कि ईटिंग डिसऑर्डर पर मनो-यौगिक उपचार का सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शोध परिणाम के तथ्यों में अनेक रोचक जानकारी एवं चिंतन के पहलू उजागर हुए हैं। जैसे एकल परिवार में रहने वाले, व्यायाम-योग आदि न करने वाले तथा अपनी शारीरिक बनावट से असंतुष्ट होकर आत्महीनता के शिकार होने वालों में यह खाने के विकार का जोखिम ज्यादा होता है। यह भी देखा गया कि भारतीय परिवेश में खाने के विकाररूपी समस्या व्यापक रूप से फैल रही है तथा प्रारंभिक अवस्था में ही इसकी रोक-थाम के लिए अधिक जागरूकता एवं चिंतन की आवश्यकता है।

अध्ययन का निष्कर्ष युवाओं की खाने की आदतों एवं उसके प्रभावों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह भी दरसाता है कि पुरुष एवं महिलाएँ—दोनों खाने के विकार के जोखिम में होते हैं, परंतु पुरुषों की तुलना में महिलाओं में यह अनुपात ज्यादा दिखाई देता है।

अध्ययन का उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष इसमें प्रयुक्त मनोयौगिक उपचार की तकनीकें हैं, जिनके कारण परिणाम में सार्थकता एवं सकारात्मकता परिलक्षित हुई है। मनोवैज्ञानिक परामर्श, सूर्य नमस्कार, प्राणायाम एवं ध्यान के रूप में प्रयुक्त सभी तकनीकें सम्मिलित रूप से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को विकसित कर संपूर्ण व्यक्तित्व एवं जीवन में सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। ❑

यूनान में किलेंथिस नामक एक बालक रहा करता था। वह गरीब परिवार से था। एक बार उसके सहपाठियों ने उसके विरुद्ध शिकायत लिख दी कि किलेंथिस चोर है। वह गरीब है, फिर अपनी पढ़ाई के लिए पैसों का इंतजाम कहाँ से करता है। किलेंथिस को न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किया गया।

किलेंथिस ने अपने समर्थन में दो गवाह प्रस्तुत किए—एक वृद्ध महिला व दूसरा माली। वृद्ध महिला ने बताया कि किलेंथिस रोज उसके घर का काम कर जाता है व उसके बदले वह उसे पैसे देती है। माली ने भी उसके यहाँ कार्य करने की पुष्टि की। इतनी कम उम्र में अध्ययन के लिए यह लगाव किलेंथिस में देखकर, उस न्यायाधीश ने किलेंथिस को सरकारी वजीफा देने के लिए संस्तुति दी। जो उसे दंड दिलाना चाहते थे, उन्हें मुँह की खानी पड़ी।

किलेंथिस आगे चलकर देश का प्रसिद्ध न्यायाधीश बना।

युगगीता – 313

अनुशासनहीन, मूढ़ और कृतघ्न होते हैं तामसी कर्त्ता

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की अट्ठाईसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के सत्ताईसवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान कृष्ण राजसिक कर्त्ता के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जब कोई कर्त्ता कर्मफल की लालसा, लोभ, हिंसक प्रवृत्ति, अशुचि, हर्ष एवं शोक से प्रेरित होकर कर्म करता है तो वह राजसी कर्त्ता कहलाता है। जहाँ सात्त्विक कर्त्ता के कर्मों को करने का आधार आध्यात्मिक गुणों की प्राप्ति होता है तो वहीं राजसी कर्त्ता के कर्मों को करने का आधार लौकिक एवं सांसारिक लाभों की प्राप्ति होता है, इसीलिए ऐसा व्यक्ति फिर 'रागी' अर्थात रजोगुण के आधिक्य वाला होता है। उसके कर्म करने का आधार कामना, वासना, तृष्णा, आसक्ति की प्रतिपूर्ति होता है। इसीलिए उसके कर्म को करने का आधार फलों की प्राप्ति होता है, निष्कामता नहीं। मनोनुकूल परिणाम आने पर उसे हर्ष होता है और मनोवांछित फल की प्राप्ति न होने पर वह शोकाकुल हो जाता है।

राजसी कर्त्ता लोभी भी होता है अर्थात जितना मिल गया, उतने से वह संतुष्ट नहीं होता, बल्कि और मिले, मिलता ही जाए—ऐसी उत्कंठा उसके मन में होती रहती है। श्रीभगवान कहते हैं कि इसीलिए ऐसे कर्मों को करने वाला कभी स्वयं को तृप्त एवं संतुष्ट अनुभव नहीं करता। अंतर्मन में अभाव, अतृप्ति, असंतोष उसके स्वभाव को अशुचि एवं हिंसा से युक्त कर देते हैं। उसकी स्वार्थपूर्ति में यदि कोई बाधा बनता दिखता है तो उसके प्रति हिंसा तक करने में उसे कोई संकोच नहीं होता। भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिनका जीवन इस तरह का होता है, वे फिर हर्ष, शोक, राग-द्वेष, सुख-दुःख इन्हीं उलझनों की प्राप्ति में लगे रहते हैं—उन्हें फिर किसी प्रकार से आत्मिक संतोष का अनुभव नहीं होता। वे ये अनुभव ही नहीं कर पाते कि इस संसार में सब कुछ अस्थायी है और एक दिन ये सब पीछे छूट जाएगा।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च, कर्ता तामस उच्यते॥ *28*॥

शब्दविग्रह—अयुक्तः, प्राकृतः, स्तब्धः, शठः नैष्कृतिकः, अलसः, विषादी, दीर्घसूत्री, च, कर्ता, तामसः, उच्यते।

शब्दार्थ—कर्त्ता (**कर्ता**), अयुक्त (**अयुक्तः**), शिक्षा से रहित (**प्राकृतः**), घमंडी (**स्तब्धः**), धूर्त (**शठः**), और दूसरों की जीविका का नाश करने वाला (तथा) (**नैष्कृतिकः**), शोक करने वाला (**विषादी**), आलसी (**अलसः**), और (**च**), दीर्घसूत्री है (वह) (**दीर्घसूत्री**), तामस (**तामसः**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात जो कर्त्ता अनुशासनहीन, अशिष्ट, हठी, कपटी, आलसी तथा निराश होता है तथा दीर्घसूत्री अर्थात कार्यों को टालने वाला होता है, वह तमोगुणी

कर्त्ता कहलाता है। भगवान श्रीकृष्ण अब तामसिक गुणों का निरूपण करते हुए अर्जुन से कहते हैं कि तमोगुण के प्रभाव से युक्त व्यक्ति का मन-मस्तिष्क सदा नकारात्मक विचारों से कलुषित रहता है और इस कारण से वह अनुशासनहीन हो जाता है।

श्रीभगवान यहाँ 'अयुक्त' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका अर्थ होता है मूढ़। तमोगुण का प्रभाव व्यक्ति को मूढ़ता से युक्त कर देता है। किस समय में कौन-सा कार्य करना चाहिए? क्या करने से हमें लाभ है, क्या करने से हमें हानि है? इस विषय में तामसी कर्त्ता कभी विचार नहीं करता अर्थात किए जाने योग्य एवं न किए जाने योग्य कार्यों के प्रति वह पूर्णतया असावधान या अयुक्त रहता है।

इसी के साथ भगवान यहाँ कहते हैं कि वह 'प्राकृत' अर्थात असभ्य होता है। शिष्टाचार-सदाचार से उसका जीवन रहित होता है और तमोगुण की अधिकता के कारण वह हमेशा अकड़ में रहता है। उसके जीवन से शिष्टता-विनम्रता-शालीनता विदा हो जाते हैं और वो एक असभ्य, कदाचारी व्यक्ति का जीवन जीता दिखाई पड़ता है।

साथ ही अपनी एक जिद होने के कारण वह दूसरों की दी गई शिक्षाओं को नहीं मानता और शठ अर्थात जिद्दी हो जाता है। सिखाया मात्र उसी को जा सकता है, जो सीखने की अभिलाषा रखे, पर जो व्यक्ति असावधान है, असभ्य है, अपनी अकड़ में है, उसे सही मार्ग दिखाना ही कठिन होता है—उस पर चलना तो उसके लिए लगभग असंभव ही होता है।

शास्त्रों में उचित-अनुचित आचरण के लिए निर्देश दिए गए हैं, परंतु तमोगुण की अधिकता से प्रेरित कर्त्ता उनको जानकर भी उनसे अनजान बने रहते हैं। इसीलिए यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने उनके लिए 'स्तब्ध' शब्द का प्रयोग किया है अर्थात जो तर्क, बुद्धि, सद्ज्ञान सभी के प्रति अपने कानों को बंद करके बैठे हों। इसीलिए वे प्राय: शठी अर्थात जिद्दी, धूर्त तथा नीच प्रवृत्ति के होते हैं।

इसके उपरांत भगवान श्रीकृष्ण ऐसे कर्त्ता को 'नैष्कृतिक:' कहकर के पुकारते हैं, जिसका अर्थ होता है कृतघ्न। सात्त्विक गुणों वाला व्यक्ति सदा उस व्यक्ति का उपकार मानता है, जिसने उसका भला किया हो, उसका साथ दिया हो, परंतु तामसी कर्त्ता उपकार करना तो दूर उपकार करने की सोचता भी नहीं है। इसी के साथ ऐसा व्यक्ति आलसी, विषादी एवं कामों को टालमटोल के भाव से करने वाला भी होता है। उसके अधम विचार किसी अन्य की तुलना में उसको स्वयं को ज्यादा प्रभावित करते हैं, इसीलिए वे सदा नकारात्मक विचारों से घिरे रहते हैं।

न पृष्ठ: कस्यचिद् ब्रूयात्।

अर्थात जब तक कोई कामना व्यक्त न करे, तब तक उसको उपदेश नहीं देना चाहिए।

श्रीमद्भागवत में ऐसे व्यक्तियों के लिए कहा गया है—

सात्त्विक: कारकोऽसंगी रागान्धो राजस: स्मृत:।
तामस: स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मद्पाश्रय:॥

—11.25.26

अर्थात जो कर्त्ता अनासक्त होते हैं वे सात्त्विक प्रकृति के होते हैं। वे जो केवल कर्म और कर्मफलों के प्रति आसक्त होते हैं, वे राजसिक कहलाते हैं और जो मूढ़ होते हैं, वे तामसिक होते हैं, लेकिन जो कर्त्ता मेरे शरणागत होता है, वो तीनों गुणों से पार चला जाता है। (क्रमश:)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

संकल्प की अपार शक्ति (पूर्वार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी, जिनके धरती पर अवतरण के शतवर्षीय उत्सव को समस्त गायत्री परिवार अत्यंत उमंग एवं उत्साह के साथ मना रहा है—उनके उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि वे व्यक्ति के अंत:करण को स्पंदित करने के अतिरिक्त उसे सत्पथ पर चलने के लिए प्रेरित भी करते हैं। अपने एक ऐसे ही अलौकिक उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी संकल्प की शक्ति का महत्त्व बताते हुए कहती हैं कि संकल्प की शक्ति अपरंपार है। वंदनीया माताजी गायत्री जयंती को संकल्प का पर्व घोषित करते हुए कहती हैं कि संकल्प में हजारों हाथियों के बराबर बल होता है। भगवान राम से लेकर भगवान हनुमान, एकलव्य एवं परमपूज्य गुरुदेव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वंदनीया माताजी हर साधक को संकल्प शक्ति दृढ़ करने का निर्देश देती हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

संकल्प की शक्ति

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।''

हमारे आत्मीय परिजनो! आज उस शक्ति का जन्मदिन है, जिसे गायत्री जयंती कहते हैं। गायत्री कौन? शक्ति कौन? संकल्प की शक्ति, जिसका आज जन्मदिन है।

जैसा कि अभी लड़के गा रहे थे—''भगीरथ ने जन्म लिया।'' और आज से साठ-पैंसठ साल पूर्व उनके जीवन में एक छाया अर्थात संकल्प आया कि हमको गायत्री माता ने पुकारा है और कहा है कि बेटे मेरे वेग को कौन धारण करेगा?

उन्होंने कहा कि माँ! मैं करूँगा, आपके वेग को धारण और उसी दिन संकल्प ले लिया कि जो हमारी माँ पुकार-पुकारकर कह रही है कि बेटे मैं तो दबी जा रही हूँ। मुझे कोई जानता नहीं है। जहाँ करोड़ों की संख्या में मेरे बालक हैं—बेटे हैं, बेटियाँ हैं, वो मुझको जानते तक नहीं हैं। उन तक मुझे पहुँचा। मैं देखना चाहती हूँ और मैं उनके हृदय में निवास करना चाहती हूँ।

किसने कहा? गायत्री माता ने कहा। उन्होंने कहा कि यह हमारा संकल्प है और उस संकल्प को उन्होंने पूरा किया। कहते हैं कि संकल्प में हजार हाथियों का बल होता है। जिसका संकल्प अटल होता है, उसका संकल्प पूर्ण होने में देरी नहीं लगती।

माँ गायत्री को आने में देर नहीं है और आज के दिन वे अवतरित हो गईं और उनका वेग उनके बेटे भगीरथ ने सँभाला। कैसे? मैं दोनों की ही उपमा दूँगी, एक भगीरथ की और एक शंकर जी की। भगीरथ ने अपने को तपा डाला। गंगा को स्वर्ग से धरती पर लाने के लिए एड़ी से लेकर चोटी तक का जोर लगा दिया।

संकल्प के धनी कौन? भगीरथ और वेग सँभालने के लिए संकट जैसी स्थिति में शंकर जी ने कहा कि अपनी जटा फैलाकर इसका वेग हम सँभालेंगे। अपनी माँ को लाने में और जनमानस के हृदय में विराजमान करने के लिए हम दृढ़ संकल्पित थे।

गायत्री जयंती का संकल्प

आज गायत्री जयंती है, श्रद्धा-सुमन चढ़ाने का पर्व है और ये संकल्पित होने का पर्व है। आज संकल्प लिया जाना चाहिए कि जनमानस में कोई भी घर, कोई भी नर, कोई भी नारी ऐसी नहीं रहनी चाहिए, जहाँ कि हमारी माँ विराजमान न हों। ये संकल्प का दिन है। आज गंगा दशहरा है। भगीरथ ने संकल्प किया था। करोड़ों बेटे कहाँ रह रहे थे? उन्होंने संकल्प लिया कि माँ गंगा अब तो आपको अवतरित होना ही पड़ेगा। चाहे तेरा बेटा मिट ही क्यों न जाए। मिट जाना हमको मंजूर है, लेकिन हम संकल्पविहीन नहीं हो सकते। हम संकल्प को पूरा करके ही छोड़ेंगे।

शंकर जी ने कहा कि तू ले आएगा गंगा? उन्होंने कहा कि गंगा को आना ही पड़ेगा; क्योंकि हमारे अंदर संकल्प शक्ति है। हमने संकल्प किया है कि जब तक हम गंगा को धरा पर नहीं लाएँगे, तब तक हम चैन से नहीं बैठेंगे। उन्होंने कहा कि हाँ, लड़का तो कुछ दमदार मालूम पड़ता है। यह संकल्प से नहीं डिगेगा। उन्होंने कहा कि बेटे! गंगा जी आएँगी तो गंगा जी का वेग कौन सँभालेगा? कोई सँभाले चाहे नहीं सँभाले, लेकिन गंगा को आना पड़ेगा, क्योंकि भक्त से भगवान छोटा होता है। भक्त बड़ा होता है, भगवान छोटा होता है। आर्त्तनाद सुन करके माँ नहीं आएगी? आना ही पड़ेगा।

माँ गायत्री और माँ गंगा

बछड़ा जब-जब चिल्लाता है तो अपनी माँ को पुकारता है, तो गाय रँभाती है और दौड़ी हुई चली आती है। बछड़ा गाय के समीप आता हुआ चला जाता है। शंकर जी ने अपनी जटाओं को फैला दिया। उन्होंने कहा कि मेरी ये जटाएँ फैली हुई हैं, गंगा आ, और गंगा आ गई।

आज दो पर्व हैं—गायत्री जयंती और गंगा दशहरा, दोनों पर्व एक साथ। एक ज्ञान की गंगा और दूसरी पतितपावनी गंगा है। ज्ञान की गंगा का अवतरण आज के दिन हुआ। व्यक्ति के अंदर यदि ज्ञान आता हुआ चला जाए तो अज्ञानता का अँधेरा मिटकर ही रहेगा और जब तक अज्ञानता का अँधेरा छाया रहेगा तो ज्ञान का उदय कैसे होगा? ज्ञान का उदय होना और अंधकार मिटना, यही संकल्प है। यह आपके संकल्प के ऊपर है। व्यक्ति का संकल्प कभी निरर्थक नहीं जाएगा।

सृष्टि-निर्माता ब्रह्मा जी के चारों मानसपुत्र—सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार आत्मज्ञान के निमित्त तपस्या कर रहे थे।

उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अपना डमरू 14 बार बजाया।

भगवान शिव के डमरू से निकले ये सूत्र ऋषि पाणिनि के चित्त पर माहेश्वर सूत्रों के रूप में प्रकट हुए व संस्कृत व्याकरण का आधार बने।

शास्त्र इस संदर्भ में कहते हैं—

नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्
एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

क्या है शांतिकुंज ?

बेटे, शांतिकुंज क्या है? शांतिकुंज शक्ति है। हम तो व्यक्ति भी हो सकते हैं, व्यक्ति हैं, पर भीतर में जो समायी हुई है वो शक्ति आप नहीं देख रहे। अंदर में जो शक्ति समायी हुई है, वो आप देख रहे होते तो मजा आ जाता। व्यक्ति तो चले जाएँगे, व्यक्ति का मतलब हाड़-मांस।

हाड़-मांस तो चला जाएगा, लेकिन जो शक्ति इसमें विद्यमान है, वो अभी भी है और फिर भी रहेगी। कब तक रहेगी? हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक रहेगी। क्यों यह शक्ति है न? व्यक्ति नहीं है, व्यक्ति चला जाएगा। हाड़-मांस चला जाएगा, लेकिन शक्ति विद्यमान रहेगी।

रामकृष्ण परमहंस शक्ति हैं, व्यक्ति नहीं हैं और शांतिकुंज क्या है? यह शक्ति है, व्यक्ति नहीं है। यह शक्ति विद्यमान है और यह हजारों वर्षों तक और लाखों वर्ष तक विद्यमान रहेगी। जिनके अंदर हमने प्राण फूँके हैं और माँ को विराजमान किया है। यह संकल्प शक्ति है।

संकल्प शक्ति का बल

'संकल्प शक्ति में हजार हाथियों का बल होता है'—मैंने अभी हाल आप से निवेदन किया था। टिटिहरी ने संकल्प किया था कि समुद्र मेरे अंडे लौटा दे, नहीं तो मैं शाप देती हूँ कि तुम्हें सुखा दूँगी। उसका संकल्प बल देखकर के अगस्त्य ऋषि आए और उन्होंने कहा कि टिटिहरी तू यह क्या कर रही है?

उसने कहा कि समुद्र या तो मेरे अंडे लौटा दे और अगर अंडे नहीं लौटाता तो तुझे अभी सुखाती हूँ; क्योंकि मेरे अंदर संकल्प है और संकल्प में शक्ति होती है। उन्होंने कहा कि नहीं यह मत कर। जब तूने संकल्प किया है तो शक्ति मेरी है और कहते हैं कि समुद्र सूख गया तथा टिटिहरी के अंडे वापस आ गए।

जरा-सी नाचीज टिटिहरी और संकल्प? संकल्प बहुत बड़ा होता है। व्यक्ति चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, यदि उसका आत्मबल और संकल्प बल सुदृढ़ है तो वह लाखों-करोड़ों की संख्या में एक गिना जाएगा क्योंकि उसके अंदर शक्ति है, भीम जैसी, अर्जुन जैसी शक्ति है। अर्जुन से कई बार यह कहा कि तू उठ और लड़।

अर्जुन बोला नहीं, मेरे तो भाई-भतीजे बैठे हैं और कुनबे वाले बैठे हैं। मेरी तो बेटी आ रही है और मेरा तो बेटा भी पढ़ने जाने को है और मैं कैसे लड़ूँगा? ये जो मेरे भाई हैं, मेरे भतीजे हैं, मैं उन कौरवों से कैसे लड़ूँगा? अंतरात्मा में जो कौरव विराजमान हैं, इनसे लड़ने के लिए कृष्ण ने कहा कि अरे जनखे! तुझे शरम नहीं आती इस बात को कहने में कि लड़ेंगे कैसे? युद्ध लड़ना पड़ेगा और उसने संकल्प लिया। अर्जुन ने जब संकल्प लिया तो भगवान कृष्ण सारथी बन गए।

सारथी कब बन गए, जब उनने संकल्प लिया और जब तक उन्होंने संकल्प नहीं लिया था तब तक, तब तक कृष्ण क्या मदद कर पाए थे? नहीं, कृष्ण मदद नहीं कर पाए थे। मदद उन्होंने तब की, जब उसने संकल्प लिया और जब संकल्प लिया तो फिर वो दिन आने में देर नहीं हुई। विजय पांडवों की हुई। क्यों नहीं होती? क्योंकि संकल्प था।

गिलहरी का संकल्प

एक गिलहरी का संकल्प था जो कि अपने बालों में धूल और बालू ले जा करके और समुद्र में डाल रही थी। पूछा गया कि अरे गिलहरी! तू यह क्या कर रही है? करती क्या हूँ, मैं इस समुद्र को पाट रही हूँ; क्योंकि राम की सीता को वापस भी तो लाना है न। सीता वापस कैसे आएगी, जब तक समुद्र पटेगा नहीं? तो इस पर से जाएँगे कैसे? समुद्र पार कैसे करेंगे? मैं अपने भगवान राम के लिए समुद्र को पाट रही हूँ। समुद्र को पाट लेगी? उसने कहा—हाँ मैं पाट लूँगी; क्योंकि मेरे अंदर संकल्प बल है।

कहते हैं कि भगवान राम ने उस गिलहरी को हाथ पर रख करके बहुत प्यार किया। उन्होंने कहा कि इसके अंदर जो संकल्प की शक्ति है, वो उन इंजीनियरों से ज्यादा अपार है, जो कि बाँध बाँधने के लिए आए थे। उन्होंने कहा कि यह तो जानकार है, लेकिन अज्ञान में है। इसमें कोई ज्ञान नहीं है। यह जो गिलहरी है, इसके अंदर अपार शक्ति है और यह संकल्प शक्ति की धनी है। जिसके पास संकल्प शक्ति है, वो जाने क्या-से-क्या कर सकता है?

बेटे! मैंने आपसे निवेदन किया कि जिस किसी ने भी संकल्प लिया है, वह अपार संपदा का स्वामी बना है। संपदा केवल पैसे को नहीं कहते, केवल दौलत को ही संपदा नहीं कहते। संपदा उन गुणों को कहते हैं, जो ईश्वरीय शक्तियाँ आपके अंदर आती हुई चली जाती हैं, वो होती है असली संपदा। कौन-सी संपदा? जो विनोबा भावे के अंदर थी, जिन्होंने कहा कि हम पदयात्रा करेंगे। कौन थी वह शक्ति? वह संकल्प शक्ति थी।

नहीं साहब! हम तो मोटरकार में चलेंगे। हमारे लिए तो ये है ही नहीं, अत: हम पैदल चलेंगे। ये कौन-सी संकल्प शक्ति है? मैंने अभी रामकृष्ण परमहंस का जो उदाहरण दिया, वह संकल्प शक्ति का है। जिन्होंने संकल्प लिए हैं, उन्होंने बड़े गजब के काम किए हैं।

हनुमान ने जब संकल्प कर लिया कि अब तो हमको लंका में प्रवेश करना ही है, तो वे शक्तिशाली हनुमान हो गए। उससे पहले हनुमान कौन थे? सुग्रीव के यहाँ थे, लेकिन जिस दिन संकल्प ले लिया तो उस दिन से क्या हो गए हनुमान? आहा, कैसे शक्तिशाली, जहाँ-जहाँ गए, वहीं तहलका मचा दिया, सबसे टक्कर लेते हुए लंका में आग लगा दी।

किसने लगा दी? हनुमान जी ने, कब लगा दी? तब लगा दी, जब उन्होंने संकल्प किया था कि हमको राम के उद्देश्यों के लिए, राम के लिए जीना है अर्थात राम की विचारधारा के लिए और सिद्धांतों के लिए जीना है। रावण की जो अनीति है, उसके विरुद्ध हमको लड़ना है।

जहाँ कहीं भी अनीति है, जहाँ भी कहीं अनाचार है, उसके लिए यदि हमारे अंदर संकल्प है तो हम जहाँ कहीं भी जाएँगे, हमारी वाणी में सरस्वती पैदा होगी।

व्यक्ति सुनेगा, कैसे नहीं सुनेगा? उसको सुनना पड़ेगा, हजार बार सुनना पड़ेगा और उस रास्ते पर चलना पड़ेगा और वह चलेगा और जब तक हमारे

संत रघुवर दास के निकटवर्ती शिष्य माधव दास प्रसिद्ध विद्वान थे और साथ ही दिल से अत्यंत नेकदिल इनसान। वे सब्जी की छोटी-सी दुकान चलाते थे; ताकि उससे गुजारे के लिए धन मिल जाए।

उनकी नेकदिली का फायदा उठाने वालों की भी कमी नहीं थी। कई लोग उनके पास जान-बूझकर खोटा सिक्का छोड़ जाते थे और उसके बदले वे उन्हें सब्जी इत्यादि दे देते थे। धीरे-धीरे अनेक लोग ऐसा करने लगे।

यह देख उनके मित्रों ने उनसे पूछा कि वे उन लोगों को टोकते क्यों नहीं हैं? तो वे बोले—मैं भी तो ईश्वर का खोटा इनसान हूँ, जब वे मुझे अभी तक चला रहे हैं तो मैं सिक्कों को लौटाने वाला कौन होता हूँ?

भगवान के सच्चे भक्त, हर कर्म को प्रभु का प्रेम मानकर स्वीकार करते हैं।

भीतर संकल्प नहीं है तब, माताजी! हमारे मन में तो ऐसा आ रहा है, हम काम तो करते हैं, लेकिन आपकी जो बहू है, कभी-कभी बीमार पड़ जाती है और अधिकतर हमारे मार्ग में रोड़े पैदा करती है।

यह गलत है। चलने वाले को कभी किसी ने नहीं रोका है और जिसने संकल्प लिया है, उसे डिगाने वाला दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ है। न माँ डिगा सकती है, न पत्नी डिगा सकती है। कोई भी अवरोध आड़े नहीं आ सकते। यदि व्यक्ति का संकल्प बल है तो! और संकल्प बल नहीं है तो वो इधर-की-उधर करता ही रहेगा।

जिन्होंने संकल्प किए हैं, उन्होंने बहुत कुछ पाया है। एकलव्य ने संकल्प किया था कि गुरु का अनुदान हम ले करके ही हटेंगे और वो ले करके हटा। कौन-से, गुरु से? मिट्टी के गुरु से। मिट्टी का गुरु कुछ देता है? अरे बेटे, संकल्प देता है। उसका जो संकल्प था, उस संकल्प के वशीभूत होकर के मजबूर होकर के द्रोणाचार्य को अपनी शक्ति का एक अंश उसको देना पड़ा और उससे वो धनुर्विद्या में निपुण बन गया और दूसरे कौन-कौन बन गए? शिवाजी बन गए।

किससे बन गए? संकल्प-से। संकल्प लिया न कि हम संकल्प लेते हैं कि हमको गुरु का वरदान मिलना ही चाहिए। हमको माँ दुर्गा की कटारी मिलनी ही चाहिए, क्योंकि अनीति के विरुद्ध हमको उठना है, हमको जगना है और दूसरों में हमको चेतना फैलानी है और वो चेतना फैलानी है कि जिसकी इतिहास गवाही देता हो कि हाँ कोई व्यक्ति था।

ये कौन-सा व्यक्ति है, जिसने यह संकल्प लिया कि हमको समर्थ गुरु रामदास का वरदान मिलना ही चाहिए। समर्थ गुरु रामदास ने उसको वरदान दिया था और शक्ति दी थी। किसको? संकल्प वाले को और किसी को दी? बहुत शिष्य हुए होंगे।

संतों के सिद्धांत

बेटे, जाने कितने हुए होंगे, लेकिन शक्ति एक को मिली। जिस उद्देश्य के लिए जन्म लिया है और जिन सिद्धांतों पर चल रहे हैं, आप उसको आँक नहीं सकते। हम हर दिल में झाँकते रहते हैं, लोगों के दिलों में झाँकते रहते हैं कि हम किसको संत बनाएँ? इसको बनाएँ या उसको बनाएँ, किसको बनाएँ? फिर निराशा ही हाथ लगती है; क्योंकि उनके दिमाग में यह बात आ जाती है कि हम नेता हैं।

ओहो, अरे तो फिर संत कैसे हो गए? गुरुजी के इतिहास को देख तो तुझे मालूम पड़ेगा कि आज से 50 वर्ष पूर्व जो हमसे जुड़े हुए हैं, उनको मालूम है कि हम किस स्थिति से कहाँ-से कहाँ तक कैसे आए? तुम्हारे लिए तो मोटरकार चाहिए, वो थर्ड क्लास में चलते थे।

वो गांधी जी के, विनोबा के पदचिह्नों पर चलने वाले थे और आप? आप तो ये कहेंगे कि यह नहीं था, वो नहीं था हम तो भोजन करने के लिए गए थे। भोजन करने के लिए नहीं गए थे बेटे, कारों में घूमने के लिए नहीं गए थे, बल्कि हम उस चेतना को फैलाने के लिए गए थे। चाहे हमको काँटों पर चलना पड़ेगा तो काँटों पर चलेंगे, भूखे रहना पड़ेगा तो भूखे रहेंगे और चने खाने पड़ेंगे तो चने खाकर रहेंगे।

ये वो सिद्धांत हैं, वो भावनाएँ हैं, जिनको हम देखते हुए चल तो रहे हैं, बीजांकुर तो हो रहा है। ऐसा तो हम नहीं कहते कि श्रद्धा नहीं है, श्रद्धा तो है, पर अभी उस स्टेज तक नहीं आ पाए। उस स्टेज तक जिस दिन आ जाएँगे तो हमको बहुत खुशी और अपार प्रसन्नता होगी कि हम अपने पीछे संतों का एक समूह छोड़कर आए हैं। एक संत नहीं, संतों का समूह छोड़कर आए हैं।

अभी गिनते हैं तो कहते हैं कि 56 लाख संत हैं। 56 लाख संत जिस देश में हों, उसमें

निरक्षरता रह जाएगी? गुंडागर्दी रह जाएगी? दहेज का दानव रह जाएगा? अनाचार और अत्याचार रह जाएगा क्या? हम तो कहते हैं कि इस देश में पाँच या दस ही संत हो जाएँ तो कल्याण हो जाएगा। अभी संत दिखाई नहीं पड़ते। बेटे! हम संत बनाने के लिए भरसक प्रयास कर रहे हैं। इतना प्रयास कर रहे हैं कि रात को नींद नहीं आती है और दिन में हमको चैन नहीं पड़ता है कि हम संत कैसे बनाएँ।

संत पथ के अनुयायी

तो माताजी! संत बना करके फिर आप क्या करेंगे? हम आज से ही अपना घर-बार छोड़ करके आ जाएँ। बीबी को छोड़ दें, बच्चों को छोड़ दें। हाँ बेटा घर से ऊब गया होगा? घर में तेरा लड़ाई-झगड़ा होता होगा। बेटे! बीबी-बच्चे छोड़ने के लिए हम नहीं कह रहे हैं। हम तो उस प्रवृत्ति के लिए, उस सिद्धांत के लिए कह रहे हैं कि जो संत का सिद्धांत है, संत की जो परंपरा है और संत की जो भावना है, आप उन भावनाओं को लेकर के चलिए।

हम यह कब कह रहे हैं कि आप बाबाजी हो जाइए। हम बाबाजी नहीं बना रहे। तुम्हें हम बाबाजी कहाँ बना रहे हैं? बाबाजी नहीं बना रहे, लेकिन संत पथ पर चलने का अनुयायी बना रहे हैं। हम यही सिखा रहे हैं और ये कह रहे हैं कि बेटे आज का यह दिन संकल्प का दिन है। आप संकल्प लीजिए कि हमको संत बनना है।

आप संत हैं कि नहीं, हमें नहीं मालूम। ऊपर से आप पीले कपड़े पहन लो या काले कपड़े पहन लो, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। पीले पहन लेंगे तो उसका असर पड़ता है।

बेटे! दूसरों की देखा-देखी हम नहीं चलते। हमारी पोशाक का रंग पीला है, जिसे हम पहनते हैं। आपने तो ऊपर का चोला रंग लिया, लेकिन भीतर को नहीं रँगा। आप अंतरंग को रँगिए। आप भीतर से संत बनिए। भीतर से आप संत बन गए तो जो भी आपके पास बैठेगा, वो प्रभावित हुए बगैर नहीं मानेगा और भीतर से संत नहीं बने हैं तो? तो कहीं, न-कहीं, कुछ-न-कुछ विकृति आती ही चली जाएगी और यही विकृति एक-से दूसरे में छूत की बीमारी का काम करेगी। हम आपको संत बनाना चाहते हैं।

संकल्प का पर्व

आज संकल्प का पर्व है तो हम आपको यह याद दिलाने के लिए आए हैं कि आप याद करिए।

आचार्य से शिष्यों ने प्रश्न किया—"गुरुदेव! शास्त्रों में समर्पण का इतना मूल्य क्यों बताया गया है।"

गुरु बोले—"तुम लोगों ने गणित पढ़ी होगी। गणित की गणना में शून्य का अपना कोई मूल्य नहीं होता, पर शून्य के आगे संख्या रखते ही मूल्य बदल जाता है। वही शून्य हजार, लाख, करोड़ व अरब में बदल जाता है। इसलिए तुम शून्य हो जाओ और स्वयं को हजार, लाख, करोड़ बनाने का जिम्मा परमात्मा पर छोड़ दो। इतना समर्पण आते ही मनुष्य महान बन जाता है।" शिष्यों को समर्पण का महत्त्व पता चल गया।

आपके गुरुजी ने संकल्प लिया था कि जो जनमानस त्राहि-त्राहि कर रहा है, पाप और पतन की पीड़ा से कराह रहा है—इनके लिए ज्ञान की गंगा को बहाना है। इनको शांति देनी है। इनको संतोष देना है, इनको ज्ञान देना है, इनको शक्ति देनी है, इनको भक्ति देनी है।

आप भी आज यह संकल्प कीजिए कि हमको उसी रास्ते पर चलना है, जिस रास्ते पर गुरुजी और माताजी चल रहे हैं। बेटे! धन-दौलत तो आपने कमा ली होगी न? कमा ली हो तो कोई जरूरत नहीं है। इसकी जरा भी जरूरत नहीं है। गांधी जी के पास कोई भी दौलत नहीं थी। आधी धोती पहनकर के रहते थे। हम और आप तो पूरी धोती पहनकर के रहते हैं और आपके शांतिकुंज ने आपके लिए कितना बड़ा मकान बना दिया है।

उनके पास तो 10′ × 10′ की कोठरी मैंने देखी है, जैसे गुरुजी की है। 10′ × 10′ की अखण्ड ज्योति में भी है। अब तो उसमें जरा कुछ उलटा-पुलटा कर लिया है। इतना ही नहीं, गुरुजी जहाँ भी रहे, जिंदगी काटी है, आप वहाँ जाकर के देखिए कि पंखा भी नहीं था। घर में बिजली भी नहीं थी। लालटेन की रोशनी में लिखा है। कौन से ग्रंथ? गायत्री महाविज्ञान और चारों वेदों से लेकर के और जाने क्या-क्या लिखा है।

यह जो परंपरा है, उस सिद्धांत पर, उस पथ पर हम आपको चलाना चाहते हैं। उस पथ पर आप चलेंगे तो आपको प्रसन्नता भी होगी, आपको संतोष भी होगा। दूसरों से ईर्ष्या-डाह भी नहीं होगा। नहीं तो अपने से जो बलवान है, उससे हम जलते रहेंगे। यह ज्यादा कमाता है। इसके पास ज्यादा पैसा है। यह अय्याशी से रहता है, हम नहीं रह पाते और हमें रहना नहीं है। जब हमको रहना ही नहीं तो हमें ईर्ष्या किस बात की? किसी बात की नहीं है। इस तरीके से हम संकल्प कर लें तो जीवन धन्य हो जाएगा।

बेटे, आज का दिन संकल्प का दिन है। संकल्प हनुमान जी ने लिया था, संकल्प अर्जुन ने लिया था और संकल्प बेटे किन-किन लोगों ने लिया था? मैं आपको कहाँ तक गिनाऊँ? जितने भी ऋषि हुए हैं, उन ऋषियों ने संकल्प लिया था। जनमानस की माँ गायत्री माता की उपासना, गायत्री मंत्र की उपासना विश्वामित्र ने की थी। राम ने की थी। कृष्ण ने की थी। ये ऋषियों का मंत्र है। ये ऋषियों की माँ हैं और ये जनमानस की माँ हैं।

संकल्प के ही बारे में जैसा कि मैं अभी आपसे कह रही थी, आज मेरे मन में आया कि मुझे आज संकल्प के बारे में ही कहना चाहिए। आज हम यह संकल्प लें कि हमारे समाज में जो अनीति और अत्याचार फैल रहा है—जहाँ दहेज की प्रथा है, जहाँ हमारी लड़कियाँ बलिवेदी पर चढ़ाई जा रही हैं और हमारे मन में यह संकल्प नहीं आता कि हम यह कहें कि हम अपने लड़कों की शादी में दहेज नहीं लेंगे और न उन नौजवानों के मन में आता है और न नारियों के मन में आता है कि हमारे माँ-बाप कहेंगे तब भी हमको नहीं लेना है।

दहेज न लें

दहेज लेने में नारियाँ सबसे आगे हैं। नर तो सबसे पीछे हैं, नारियाँ सबसे पहले हैं। यदि वो अपने बेटे के कान में कह दें कि बेटा तेरा बाप कहता है तो कहने दे, पर मैं तेरा साथ देती हूँ तू मत लेना, फिर देखें कैसे आ जाता है, लेकिन वो सबसे पहले आगे आती हैं और कहती हैं कि मेरा तो अकेला बेटा है, मैंने तो इंजीनियर बनाया है और मैंने तो डॉक्टर बनाया है। मेरा तो अकेला लड़का है और मैं तो 5 लाख लूँगी। किस बात के लिए लेगी 5 लाख?

मैंने तो अपनी सहेलियों का लिया है, मैंने तो अमुक का लिया है, मैंने तो तमुक का लिया है। मैं दूँगी। बहुत अच्छी बात है देना चाहिए, दे रही है तो दे। वैसे देना तो नहीं चाहिए। हम तो इसके खिलाफ़ हैं कि क्यों देना चाहिए? लिया क्यों है और क्यों दे रहे हो? देना है तो अपने पति की कमाई में से देना।

बेटी के बाप ने क्या दिया है, बेटी का बाप मुआवजा चुकाएगा क्या? यह आग हमारे अंदर पैदा नहीं होती। हमारे अंदर वो भावनाएँ पैदा नहीं होतीं कि हम अपने बच्चों में ऐसा संस्कार डालें कि

वे गई-गुजरी परिस्थितियों में भी दिन काट सकें। हम तो उनको लग्जरी सिखा रहे हैं। हम तो बेटियों को लग्जरी सिखा रहे हैं। उनका पहनावा-ओढ़ावा तो ऐसा है, जिसको देखकर के शरम आ जाती है। बनावट, बनावट, हर किसी में बनावट, लड़कों को ऐसे बिगाड़ रखा है, लड़कियों को बिगाड़ रखा है। ये कहाँ जा रही हैं।

पाश्चात्य सभ्यता को हम लेकर के चलेंगे क्या ? हम तो संत-परंपरा के अनुयायी हैं और हम अपने बच्चों को पाश्चात्य सभ्यता में रखेंगे तो हम उन्हें अपने ढाँचे में कैसे ढालेंगे। उनको ढलना चाहिए और हम उन्हें जबरदस्ती ढालेंगे। बेटे! यह संकल्प कौन लेगा ? यह संकल्प आप लेंगे। नाक कटती है तो कटवा लेते हैं। नाक तो एक दिन कटनी है तो कट-कटा के गिरे, छुट्टी हो।

नहीं साहब! ऐसा नहीं होगा तो फिर कैसे होगा ? हमारे यहाँ मृत्युभोज तो होगा ही। हमारे जाति वाले क्या कहेंगे ? हमारी तो नाक कट जाएगी, नाक कटेगी-तो-कटेगी, लेकिन हमें वो काम करना चाहिए, जो संत-परंपरा में आता है। आपसे मुझे यही निवेदन करना था। आज आप संकल्प करिए। जिन्होंने संकल्प किया, उन्होंने सारी जिंदगी बहुत अनुदान और वरदान पाया है। इतना पाया है कि बेटा हम तो निहाल हो गए।

हे भगवान! ऐसा अनुदान, वरदान हर किसी को देना। गायत्री माता जैसी हमको फलीभूत हुई हैं, जैसी हमारे ऊपर सवार हुई हैं, ये हर किसी के ऊपर सवार हों, सबके लिए ये हमारा आशीर्वाद है। जैसा आशीर्वाद हमको मिला है, वैसा आप सबको भी मिले, लेकिन आप सब जब तक हंस के तरीके से नहीं बनेंगे, तब तक गायत्री माता नजदीक नहीं आ सकतीं, तब तक आपके हृदय में नहीं बैठ सकती हैं।

(क्रमशः अगले अंक में समापन)

शिष्य ने आचार्य चरक से प्रश्न किया—"संसार में जो अगणित व्याधियाँ हैं ? इनका मूल कारण क्या है ?"

आचार्य चरक ने उत्तर दिया—"व्यक्ति के पास जिस स्तर के पाप एकत्रित हो जाते हैं, उसी के अनुरूप शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।"

सत्य ये ही है कि व्यक्तिगत पापों का दंड एक व्यक्ति भोगता है और सामूहिक पापों का दुष्परिणाम समस्त समाज को भोगना पड़ता है।

विकसित भारत की नींव रखता विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान-परंपरा पूज्य गुरुदेव के उस दूरदर्शी चिंतन की अभिव्यक्ति है, जिसमें ज्ञान, संस्कृति और नैतिकता के आधार पर एक सशक्त एवं विकसित भारत की परिकल्पना की गई है। पूज्य गुरुदेव ने शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास का माध्यम न मानकर, उसे व्यक्तित्व और राष्ट्र निर्माण का आधार माना। जीवन-विद्या का आलोक केंद्र—देव संस्कृति विश्वविद्यालय इसी दिव्य संकल्प का साकार रूप है, जो भारतीय ज्ञान-प्रणाली को समकालीन संदर्भों से जोड़ते हुए वैश्विक स्तर पर सार्थक संवाद स्थापित कर रहा है।

यहाँ आयोजित अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों की शृंखला इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जो विकसित भारत के विचार को वैचारिक गहराई और व्यावहारिक आधार प्रदान करती है। इसी क्रम में विगत दिनों ज्ञान, संस्कृति और राष्ट्रीय चिंतन के समन्वय को समर्पित एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक पहल के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं की शृंखला का भव्य शुभारंभ विश्वविद्यालय में हुआ।

यह कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा वर्ल्ड असोसिएशन ऑफ हिंदू एकेडेमिशियंस एवं इंडियन काउंसिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च के सहयोग से आयोजित किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ विशिष्ट अतिथियों की गरिमामयी उपस्थिति में प्रतिकुलपति जी द्वारा दीप प्रज्वलन के माध्यम से हुआ। इस अवसर पर माननीय श्री सुरेश सोनी जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

उद्घाटन सत्र में संगोष्ठी के संयोजक प्रो. नचिकेता तिवारी जी, माननीय श्री मिलिंद परांडे जी, स्वामी विज्ञानानंद जी एवं श्री आलोक कुमार जी ने कार्यक्रम के महत्त्व को रेखांकित किया। इस अवसर पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि, जिनमें हासन विश्वविद्यालय कर्नाटक के कुलाधिपति, केंद्रीय विश्वविद्यालय हरियाणा के कुलपति तथा केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति सहित अनेक प्रतिष्ठित शिक्षाविद् एवं शोधकर्त्ता शामिल हुए।

यह संगोष्ठी शृंखला भारतीय ज्ञान-परंपरा को समकालीन संदर्भों में पुनर्स्थापित करने और भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण को सशक्त करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हुई। संगोष्ठी का समापन स्वदेशी ज्ञान, सामाजिक समावेशन एवं मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में शोध एवं सहयोग को आगे बढ़ाने के सामूहिक संकल्प के साथ हुआ।

विगत दिनों विश्वविद्यालय में आयोजित खेल एवं सांस्कृतिक महोत्सव 'उत्सव—2026' का भव्य आयोजन संपन्न हुआ। महोत्सव का शुभारंभ विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं आदरणीया श्रीमती शेफाली पंड्या जी के माध्यम से हुआ। इस अवसर पर विद्यार्थियों द्वारा आकर्षक सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दी गईं, जिससे वातावरण आनंद और ऊर्जा से भर उठा, तत्पश्चात विभिन्न प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों को सम्मानित भी किया गया।

विशिष्ट अतिथियों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन के क्रम में विगत दिनों

जॉन पॉल द्वितीय कैथोलिक यूनिवर्सिटी ऑफ ल्यूबलिन के डिपार्टमेंट ऑफ फंडामेंटल क्राइस्टोलॉजी एंड एक्लेसियोलॉजी से संबद्ध रेव. डॉ. फिलिप जोज़ेफ क्राउज़ का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

अपने प्रवास के दौरान रेव. डॉ. क्राउज़ ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट कर अंतरधार्मिक समझ, समकालीन शिक्षा में आध्यात्मिकता की भूमिका तथा वैश्विक सद्भाव को बढ़ावा देने में सांस्कृतिक संवाद के महत्त्व पर सार्थक चर्चा की।

अतिथियों के आगमन के इसी क्रम में हाल ही में अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं शैक्षिक संवाद को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विभिन्न देशों से आए बच्चों का विशेष स्वागत किया गया। इस अवसर पर 35 देशों के 146 बच्चे विश्वविद्यालय पहुँचे और प्रतिकुलपति जी से मार्गदर्शन प्राप्त किया।

इन देशों में उज्बेकिस्तान, अफगानिस्तान, अंगोला, श्रीलंका, मंगोलिया, यूक्रेन, चीन, जापान, तंजानिया, कजाकिस्तान, ऑस्ट्रेलिया, यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, मोरक्को, लाओस, सीरिया, जिंबाब्वे, नामीबिया, मॉरीशस, थाईलैंड, वियतनाम, रोमानिया, सूरीनाम, चाड, रूस, गुयाना, ईरान सहित अन्य देश शामिल रहे। इस दौरान बच्चों ने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण किया और यहाँ संचालित शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने शैक्षणिक एवं अनुसंधान सहयोग को नई दिशा देते हुए विगत दिनों नेशनल असोसिएशन ऑफ साइकोलॉजिकल साइंस, दिल्ली विश्वविद्यालय के साथ एक महत्त्वपूर्ण समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया। यह समझौता विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति तथा नेशनल असोसिएशन ऑफ साइकोलॉजिकल साइंस के अध्यक्ष की उपस्थिति में संपन्न हुआ।

इसी क्रम में केंद्रीय विश्वविद्यालय, हरियाणा के साथ एक महत्त्वपूर्ण समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। मानसिक स्वास्थ्य एवं नशा मुक्ति के क्षेत्र में सहयोग को सुदृढ़ करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए लखनऊ स्थित संभल ड्रग डी-एडिक्शन एवं मनोरोग अस्पताल के साथ भी एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए। इस अनुबंध पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति तथा मनोरोग अस्पताल के निदेशक ने हस्ताक्षर किए। इस साझेदारी के अंतर्गत दोनों संस्थानों ने मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान तथा नशामुक्ति अध्ययन के क्षेत्रों में संयुक्त शोध परियोजनाएँ संचालित करने का निर्णय लिया। ❑

तथागत बुद्ध से उनके शिष्यों ने प्रश्न किया—"भगवन्! आपने कहा है कि किसी भी व्यक्ति के साथ वैर नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध के हाँ करने पर शिष्यों ने पुनः पूछा—"फिर कोई हमारे साथ वैर करे तो हमें उसका प्रत्युत्तर कैसे देना चाहिए?"

भगवान बुद्ध बोले—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनातनो॥

अर्थात वैर को वैरता से कदापि समाप्त नहीं किया जा सकता है, अपितु उसका शमन प्रेम से ही किया जा सकता है। यही सनातन धर्म है।

कलाओं में जीवन-सौंदर्य

कलाओं में जीवन-सौंदर्य नवयुग की विशेषता बनेगी। दरअसल कला जीवन-चेतना की अभिव्यक्ति है। जब जहाँ जीवन-चेतना की जो स्थिति-स्तर व अवस्था होती है, कला की अभिव्यक्ति भी उसी के अनुरूप होती है। विचारणाएँ एवं भावनाएँ ही कला में व्यक्त होती हैं। यदि ये ही अंधकारित हों, तो फिर कला कहाँ से प्रकाशित हो सकेगी ?

बीते काफी समय से यही हो रहा है। मानव चेतना में घुसपैठ कर चुके अंधकार ने कला को प्रदूषित किया है। विचारणाओं व भावनाओं के दूषण ने कला के स्वरूप को कुरूप-विद्रूप किया है। जीवन-चेतना की विकृति ने इसे विकृत किया है। अब तो स्थिति कुछ ऐसी बन पड़ी है कि कलाओं से सौंदर्य-सुरभि, सुषमा-सुगंध खोती जा रही है। कला के नाम पर जो प्रकट हो रहा है, उससे मानव-चेतना की महिमा व गरिमा तार-तार हो रही है।

मानव-चेतना की ही भाँति कला बहुआयामी है। जब विचारणाएँ एवं भावनाएँ शब्दों में अपना सौंदर्य बिखेरती हैं, तो साहित्य का सृजन होता है। कथा-कहानी, नाटक-उपन्यास, काव्य के अनेकों रूप उभरते हैं। कविताएँ—मुक्तक, खंडकाव्य एवं महाकाव्य में अपनी जादुई अभिव्यक्ति करती हैं। अक्षरों-शब्दों का सुनहरा संसार रच जाता है। कभी-कभी इनका रूप वैचारिक-विश्लेषणात्मक-विवेचनात्मक शोध अनुभव में भी उभरता है।

विचारों में यदि बौद्धिक गहराई प्रकट हुई, तो साहित्य विश्लेषणात्मक शोध की गहराई-रहस्यमयता स्वयं में समा लेता है। यदि विचारों में भावनात्मक गहनता ने प्रवेश किया, तो साहित्य में जीवन व जगत् के प्राकृतिक व आध्यात्मिक रहस्य प्रकट होते हैं। जब यह अभिव्यक्ति सार रूप में होती है, तो सूत्र जन्म लेते हैं। इनका विस्तार शास्त्र में प्रकट होता है।

मानव जीवन ने अब तक धरती के अलग-अलग भू-भागों में विपुल साहित्य का सृजन किया है। इसने उसकी चित्त-चिंतन-चेतना को अभिव्यक्त करने के साथ संस्कृति को भी समृद्ध किया है। इसके अवलोकन-अध्ययन-अनुशीलन से बौद्धिकता व भाव-प्रवणता दोनों की ही झलक मिलती है। इसमें भावों के अनेक रंग—बुद्धि के अनेक रूप उभरते हैं। यदा-कदा, जहाँ-तहाँ इसमें मानव चेतना में समायी ईश्वरीयता की भी झलक मिलती है। साथ ही आध्यात्मिकता के अनेकों रहस्य उजागर होते हैं। इसी कारण से साहित्य सृजन की इकाई अक्षर को 'अक्षर ब्रह्म' व इसके समुच्चय शब्द को 'शब्दब्रह्म' कहा गया है।

मानव चेतना जब स्वर में अपने सौंदर्य प्रकट करती है, तो संगीत की सृष्टि होती है। गायन और वादन, लय और ताल के माध्यम से संगीत स्वयं को प्रकट करता है। प्रकृति में परमेश्वर का प्राकट्य सात स्वरों में हो रहा है। प्रथम स्वर की पुनरावृत्ति से ये सप्त स्वर स्वराष्टक भी बन जाते हैं। मानव की जीवन चेतना में जिस तरह से सप्तचक्रों के सात आयाम हैं, ठीक उसी तरह से प्रकृति की चेतना में भी ईश्वरीयता सप्त स्वरों में प्रकट हो रही है।

प्रकृति में व्याप्त इस नाद के सूत्र को थामकर परमेश्वर से सहज एकात्मता संभव है। तभी तो नाद को 'नादब्रह्म' कहा गया है। इन सात स्वरों में अनेकों राग-रागिनियाँ हैं। इन सभी में प्रकृति की सूक्ष्मताओं के आरोह-अवरोह हैं। लय हो या ताल, गायन हो या वाद्य—सभी में ऊपरी तल पर सम्मोहन है, लेकिन इसके गहरे तलों में गहन आध्यात्मिक रहस्य व ईश्वरीय अनुभव है। इसकी इसी महिमा के कारण भारत की प्राचीन संस्कृति में इसे 'गंधर्व वेद' कहकर वेद की महिमा प्रदान की गई है।

संगीत की ही भाँति शिल्प में भी मानव-चेतना स्वयं को अभिव्यक्त करती है। जब यह अपनी चेतना से पाषाण की जड़ता में चेतना को उभारती है, तो यह अद्भुत होता है। पत्थरों में इसके दो रूप प्रकट होते हैं—इनमें से प्रथम मूर्तिकला है एवं दूसरी स्थापत्य कला है। इसके पहले आयाम में पत्थर मूर्तियों के रूप में जीवंत व जाग्रत होते हैं। जबकि दूसरे आयाम में इसकी भव्यता भवनों में प्रकट होती है। शिल्प के इन दो रूपों के अलावा अन्य अनेकों रूप भी हैं। वस्त्रों में, मिट्टी में और धातुओं में भी इसका प्राकट्य होता है। अन्य प्राकृतिक उत्पादों में भी इसका प्रकटन होता है। हस्तशिल्प का यह संसार बहुआयामी और व्यापक है, जो इंद्रधनुषी सौंदर्य की सृष्टि करता है।

शिल्प के साथ चित्रकारी में भी कला स्वयं को अभिव्यक्त करती है। रेखाओं व रंगों में इसका जादुई सम्मोहन जन्म लेता है। ये रेखाएँ और रंग-मिलकर मानव प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करते हैं। इनके आयाम, इनके रूप इतने अधिक हैं; जिनकी गणना, गिनती और संख्या सीमित नहीं हैं। इनमें जीवन की समझ-सोच के साथ घुल-मिलकर रहस्यमयता के असंख्य रंग निखरते हैं।

चित्रकला में बौद्धिकता के साथ भावनात्मक गहनता कहीं अधिक गहरी होती है। जीवन व जगत् की कितनी ही बातें इसमें कही-समझाई और बताई जाती हैं। कई बार तो इसमें सहज ही प्रकृति में समायी परमात्मा की रहस्यमयता उजागर हो जाती है। जो समझते हैं, जिन्हें अनुभव करना आता है; उनके लिए चित्रकारी रेखाओं व रंगों से कैनवास पर लिखा जाने वाला काव्य है, जिसमें भाव और विचार शब्दों में ढलकर रेखाओं में अपना आकार प्रकट कर, रंगों से अपना रंग निखारते हैं।

मानव की समझ से कला का सौंदर्य—समर्थ व सक्षम बनता है। यदि समझ खोने या सोने लग जाए, तो कला भी अपना सौंदर्य गँवाने लगती है। तब साहित्य का शब्द-संसार कुत्सा को जन्म देता है। संगीत शोर बन जाता है। शिल्प विद्रूप होने लगता है और चित्रकारी विचित्र व बेढंगी हो जाती है। कला का प्रत्येक आयाम कुत्सा का कीचड़ और कालिमा की कालिख समेटने-बटोरने लगता है। वर्तमान की वास्तविकता यही है।

मानव चेतना में घुस-पैठ कर चुके अंधकार ने कला को प्रदूषित किया है। विचारणाओं व भावनाओं के दूषण ने कला के स्वरूप को कुरूप-विद्रूप किया है। जीवन-चेतना की विकृति ने इसे विकृत किया है। अब तो स्थिति कुछ ऐसी बन पड़ी है कि कलाओं से सौंदर्य-सुरभि, सुषमा-सुगंध खोती जा रही है। कला के नाम पर जो प्रकट हो रहा है, उससे मानव-चेतना की महिमा व गरिमा तार-तार हो रही है।

कला का क्षेत्र कोई भी और कहीं भी क्यों न हो, उससे जीवन का सौंदर्य लुप्त होता जा रहा है। आसुरी अँधेरे ने जब मानव मन में अँधेरा भर दिया है, तो कला में जीवन के दृश्य भला कैसे दिखेंगे? सौंदर्य की सृष्टि किस तरह हो पाएगी?

अभिव्यक्ति स्वस्थ और सुंदर हो, इसके लिए अनुभूति को भी स्वस्थ और सुंदर होना चाहिए। प्रदूषण के इस युग में जब जीवन स्वयं अपने स्वास्थ्य व सौंदर्य को गँवा रहा है, तब भला यह कला में किस तरह से प्रकट हो सकेगा? कला—साधना है, कलाकार—साधक और प्रकृति में झाँकता परमात्मा का सौंदर्य—साध्य। इनके परस्पर मिलन से कला में रसानुभूति आती है।

वेद परमात्मा को **'रसो वै सः'** कहते हैं। ऐसा इसलिए; क्योंकि परमात्मा से ही जीवन और जगत् रसमय होते हैं। उनमें सरसता की सामर्थ्य आती है। इस अनुभूति को त्यागकर सब कुछ रसहीन होने लगता है। साधक अपने साध्य के प्रेम में, साधना में निमग्न हो पाता है। इसी अवस्था में उसकी साधना अपने आंतरिक सौंदर्य व सामर्थ्य को प्रकट कर पाती है।

कला की कुत्सा—कीचड़, कालिख की कालिमा समाप्त हो; इसके लिए जीवन और जगत् से, विशेष रूप से मानव मन से इन्हें जाना होगा। आज के युग में जितना प्रदूषण बाहर है, उससे कहीं अधिक अंदर है। इस स्थिति से उबरना अब आवश्यक हो गया है। युगऋषि का महातप इसी असंभव को संभव करने जा रहा है। अंधकार का प्रकाश में, विष का अमृत में परिवर्तन इसी के बल पर संभव है। इसी के बल पर जिंदगी की उल्टी-चाल सीधी हो सकेगी।

सोच सही होने पर समझ सही होगी। समझ के सही होने पर कला की कुशलता कुशल रह सकेगी। तब कलाकार अपने कौशल को सही रीति से प्रकट कर सकेंगे। कला-क्षेत्र में आधुनिकता और यथार्थ के नाम पर जो किया जा रहा है, उसने जीवन-का-जीवन और सौंदर्य-का-सौंदर्य छीन लिया है। इस बदलाव के बदल जाने से पुनः कला और कलाकार अपनी जीवन-चेतना प्राप्त कर सकेंगे।

सतयुग की वापसी होने पर फिर से साहित्य के अक्षर और शब्द, अक्षरब्रह्म व शब्दब्रह्म के रूप में प्रकट होंगे। संगीत का शोर थमेगा और सुरीलेपन का सौंदर्य बिखरेगा। शिल्पकार फिर से अपनी नवीन चेतना से पत्थरों की जड़ता को समाप्त कर उसे चेतन करेंगे। शिल्प के सभी रूपों का जीवन-सौंदर्य प्रकट हो सकेगा। चित्रकारी तब पुनः अपनी रेखाओं व रंगों में इंद्रधनुषी आभा को प्रकट व प्रत्यक्ष कर सकेगी।

प्रकृति का सौंदर्य, कला और कलाकार को अभिव्यक्ति का सौंदर्य प्रदान करता है। जब परमात्मा का प्रेम इसमें घुलता है, तो इसमें आध्यात्मिक रहस्यमयता की ईश्वरीय अनुभूति आने लगती है। अगले दिनों की नियति, भविष्य की भवितव्यता यही है; क्योंकि प्रकृति में अवतरित हो रहा प्रकाश, मानव चेतना को प्रकाशित किए बिना न रहेगा।

प्रकृति का सौंदर्य, कला और कलाकार को अभिव्यक्ति का सौंदर्य प्रदान करता है। जब परमात्मा का प्रेम इसमें घुलता है, तो इसमें आध्यात्मिक रहस्यमयता की ईश्वरीय अनुभूति आने लगती है। अगले दिनों की नियति, भविष्य की भवितव्यता यही है; क्योंकि प्रकृति में अवतरित हो रहा प्रकाश, मानव चेतना को प्रकाशित किए बिना न रहेगा। तब कला के साथ विद्याएँ भी जीवन-रहस्य को प्रकट करने में समर्थ होंगी। ❑

अपनों से अपनी बात

प्रज्ञा साहित्य का वैश्विक प्रसार युग की आवश्यकता

इन दिनों युवाओं और साधकों के श्रम एवं स्नेहसिक्त प्रयासों द्वारा लोकमानस में परिवर्तन-परिष्कार का महान प्रयत्न संगठित रूप से चल रहा है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि युग-परिवर्तन निकट है। विश्व के विभिन्न कोनों में लोग अंतरात्मा की गहराइयों से इस विषय पर चिंतन कर रहे हैं और अपने-अपने ढंग से इस दिव्य प्रयास को गति प्रदान करने में संलग्न हैं।

इतिहास के पृष्ठों में देखा जा सकता है कि जब-जब समाज में अवांछनीय प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं, तब-तब सत्प्रयास उन्हें संतुलित करने के लिए बढ़ते हैं। इस समय भी परिस्थितियाँ वैसी ही हैं। भ्रष्टाचार, स्वार्थ, तपन और अवांछनीयता ने जनजीवन को आच्छादित कर रखा है।

ऐसे में सुधार और पुनर्निर्माण के प्रयास अनिवार्य हो जाते हैं। आज महाकाल का मनुष्य, चेतावनी देने का कार्यक्रम पूरे वेग से चल रहा है। परिवर्तन की आँधियाँ उठ रही हैं।

इस आंदोलन के तीन प्रमुख आयाम हैं—

(1) विचारधारा का उत्थान

(2) व्यक्तित्व का निर्माण

(3) कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

विचारधारा के उत्थान के बिना परिवर्तन का स्वरूप अधूरा रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि युगसाहित्य का प्रसार जन-जन तक पहुँचे। विचारों की शक्ति मनुष्य की आंतरिक चेतना को झकझोर देती है और उसे नए मार्ग पर अग्रसर करती है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक चेतना को प्रखर बनाने का प्रयास किया जा रहा है। युगसाहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज को जाग्रत करना और परिवर्तन के लिए प्रेरित करना।

यह साहित्य व्यक्ति की सोच को नया आकार देता है, उसकी भावनाओं को पवित्र बनाता है और जीवन की दिशा को उच्च आदर्शों की ओर मोड़ता है। आज यह चुनौती हमारे सामने है कि किस प्रकार प्रसार साहित्य को उन उच्चाभिरुचि क्षेत्रों तक पहुँचाया जाए, जहाँ से जनमानस को दिशा मिलती है।

शिक्षाविदों, विचारकों, कलाकारों और नीति-निर्माताओं तक यदि यह साहित्य पहुँचेगा, तभी इसका व्यापक प्रभाव समाज में देखा जा सकेगा। निस्संदेह यह एक दीर्घ और कठिन साधना है। इसके लिए साहित्य को सरल, प्रेरक और जीवन संगत बनाना होगा।

यह आवश्यक है कि लेखन केवल उपदेशात्मक न होकर हृदयस्पर्शी हो, जिससे हर वर्ग के लोग उससे जुड़ सकें। नवयुग की आवश्यकता है कि साहित्य, पत्रकारिता, वाणी और कला—सब मिलकर समाज-निर्माण के इस युगीन प्रयास में संलग्न हों। परिवर्तन के इस महाअभियान में यही सबसे प्रभावी साधन हैं, जो मानवता को नई राह दिखा सकते हैं।

साहित्य का उद्देश्य केवल तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं होता, बल्कि

वह भविष्य की आवश्यकताओं का संकेत भी देता है। यही कारण है कि महान लेखक और चिंतक अपनी लेखनी के माध्यम से समाज को नई दिशा देते रहे हैं।

भाषा का उपयोग केवल संवाद का माध्यम भर नहीं, बल्कि जनमानस को प्रेरित करने का साधन भी है।

इतिहास साक्षी है कि जब भी मानवता कठिन दौर से गुजरी है, तब विचारशील साहित्य ने उसके लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य किया है। भारत की समृद्ध भाषाई परंपरा में भी यही भूमिका निभाई गई है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, बंगाली, मराठी, तमिल, तेलुगु, उड़िया और अन्य अनेक भारतीय भाषाओं में ऐसा उत्कृष्ट साहित्य लिखा गया है, जिसने न केवल देशवासियों को जागरूक किया, बल्कि विश्व के अन्य हिस्सों तक भी अपने प्रभाव का विस्तार किया।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इस युग-परिवर्तन के साहित्य को हर भाषा और हर क्षेत्र तक पहुँचाया जाए। हिंदी साहित्य—सभी भारतीय भाषाओं में उच्चकोटि के लेख तैयार हों और साथ ही उन्हें विदेशी भाषाओं में भी अनूदित किया जाए। जब तक यह कार्य व्यापक स्तर पर नहीं होगा, तब तक इस साहित्य की पूर्ण प्रभावशीलता नहीं बन पाएगी।

विचारणीय तथ्य यह है कि युगसाहित्य केवल कुछ व्यक्तियों या समूहों तक सीमित न रहे, बल्कि समाज के हर वर्ग, हर परिवार और हर देश तक पहुँचे। इसके लिए अनुवाद, प्रसार और प्रचार के संगठित प्रयास करने होंगे। जो भी विचार और साहित्य केवल सीमित दायरे तक रह जाता है, वह समय की कसौटी पर टिक नहीं पाता।

युगसाहित्य का वैश्विक प्रसार तभी संभव है, जब उसे सरल, सुगम और जीवन से जुड़ी भाषा में प्रस्तुत किया जाए। भाषा का ऐसा प्रयोग जो हृदय और बुद्धि दोनों को छू सके, ही प्रभावकारी सिद्ध होता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य तभी जीवंत और प्रभावशाली होता है, जब उसमें कालजयी सत्य और मानवीय संवेदना का संगम हो। अतः युग की पुकार यही है कि साहित्य को केवल पुस्तकालयों या सीमित गोष्ठियों तक न बाँधकर, उसे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का हिस्सा बनाया जाए।

यही प्रयास भविष्य में समाज और मानवता को दिशा देगा और युग-परिवर्तन के इस महाअभियान को सफल बनाएगा। ❑

अहो अहं नमो मह्यमेकोऽहं देहवानपि।
क्वचिन्न, गन्ता नागन्ता व्याप्य विश्वमवस्थितः॥

—अष्टावक्र गीता 2/14

अर्थात मैं आश्चर्यमय हूँ। मुझे नमस्कार है। मैं देहधारी होते हुए भी अद्वैत हूँ। मैं कहीं जाता नहीं, कहीं से आता नहीं और मैं संसार को आच्छादित करके एक जगह स्थित हूँ।

विचार क्रांति – एक सुनिश्चित संभावना

हुई क्रांतियाँ जो भी उनका, लक्ष्य अभी तक शेष है,
होगी क्रांति विचारों की अब, गुरु का यह संदेश है॥

करुणा के भावों से गुरु ने, सबको टेर लगाई है।
सच्चिंतन से जुड़ जाने की, अनुपम वेला आई है॥
सोये जागें, आयें आगे, यह प्रभु का निर्देश है।
होगी क्रांति विचारों की अब, गुरु का यह संदेश है॥

ऋषियों ने इस धराधाम को, हैं अगणित उपहार दिए।
जिनका संबल पाकर हमने, हैं नित नए प्रयोग किए॥
प्रज्ञा युग का समय निकट है, कहता स्वर्ण दिनेश है।
होगी क्रांति विचारों की अब, गुरु का यह संदेश है॥

मनःशक्ति के संवर्द्धन हित, गुरु ने युगसाहित्य रचा।
अब उसके अतिरिक्त धरा पर, मार्ग न कोई अन्य बचा॥
सद्विचारवानों को होता, कभी न कोई क्लेश है।
होगी क्रांति विचारों की अब, गुरु का यह संदेश है॥

गायत्री की महाशक्ति से, प्रज्ञा युग अब आएगा।
सद्विवेक से जुड़कर हर जन, बुद्धिमान कहाएगा॥
सविता शक्ति से नहीं अछूता, रहना कोई देश है।
होगी क्रांति विचारों की अब, गुरु का यह संदेश है॥

—श्यामलाल शर्मा

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-18

चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवीय मस्तिष्क

मनुष्य का शरीर अपने आप में एक अजूबा है। इसमें मनुष्य के मस्तिष्क की क्षमता तो अद्‌भुत है। इस मस्तिष्क से मानव ने एक-से-एक बढ़कर संसार में ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की हैं।मस्तिष्क की विशेषताओं को जानने के लिए पठनीय है-

* मानव मस्तिष्क प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष कैसे ?
* मस्तिष्क में समायी अनंत संभावनाएँ ।
* चिंतन-प्रक्रिया की सार्थकता ।
* मस्तिष्क की अतींद्रिय शक्ति ।
* परिष्कृत मस्तिष्क की विशेषताएँ ।
* मस्तिष्क की चित्र-विचित्र कार्य प्रणाली।

।

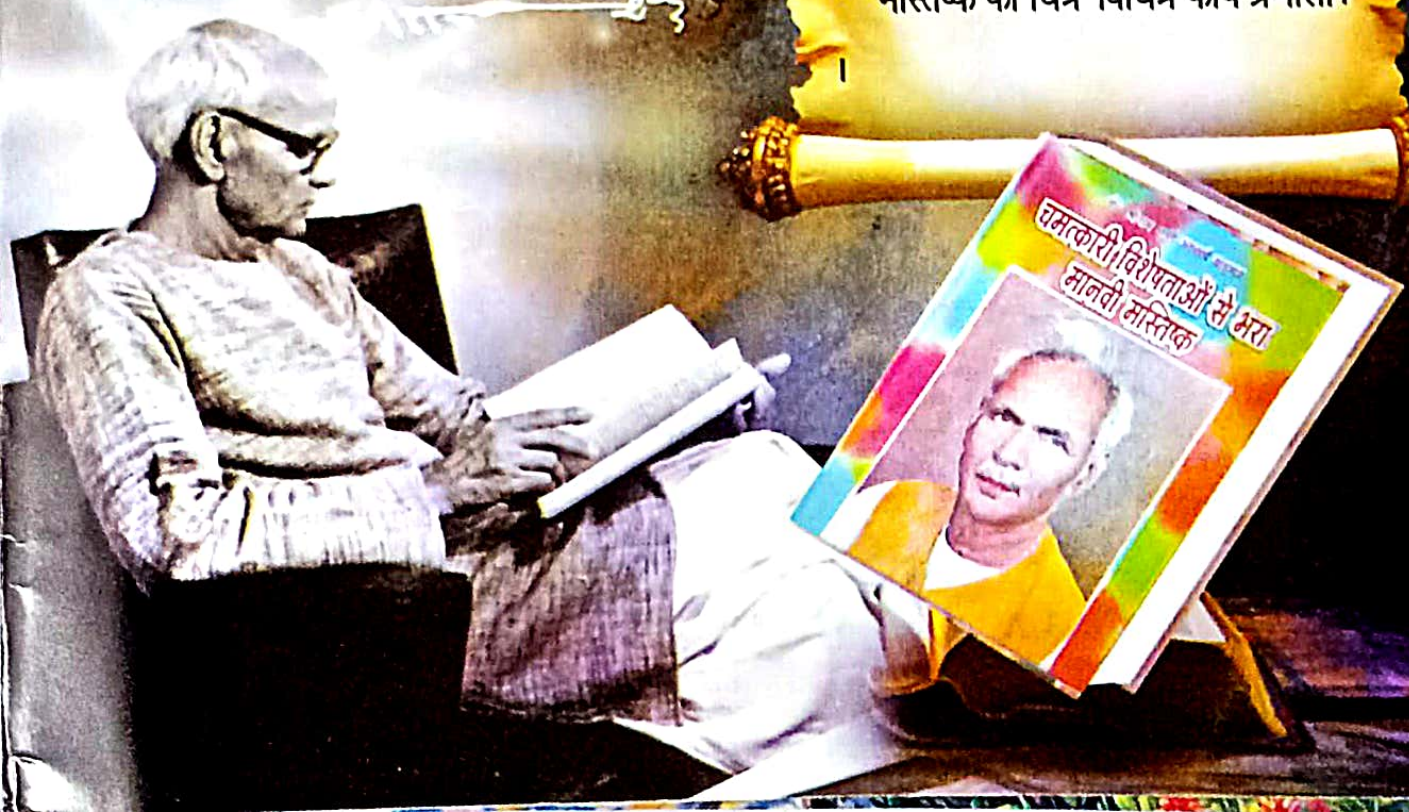

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र.ति. 01–05–2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज–हरिद्वार में ज्ञान, संस्कृति और राष्ट्रीय चिंतन के संगम को समर्पित एक महत्त्वपूर्ण अकादमिक पहल के अंतर्गत भारतीय ज्ञान–परंपरा और विकसित भारत के विमर्श को समर्पित अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन तथा कार्यशाला शृंखला का भव्य शुभारंभ

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा–वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org